संक्षिप्त

अग्र भागवत कथा

प्रस्तुतकर्ता
गिरिजाशंकर तुरकासवाला

महाराजा अग्रसेन

महारानी माधवी

श्रद्धा सुमन

पूज्यनीय पिताजी
स्व. श्री प्रभुलाल जी अग्रवाल
'तुरकासवाले'

पूज्यनीय माताजी
स्व. श्रीमती रामजानकी देवी

।। श्री गणेशाय नमः ।।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुःसाक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

संक्षिप्त

अग्र-भागवत कथा

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविनणं त्वमेव, त्वेमव सर्वं मम देवदेव।।

महाराजा श्री अग्रसेन जी के जीवन चरित्र पर आधारित प्रमाणित
अग्र-भागवत कथा के प्रचार-प्रसार हेतु संक्षित विवरण

प्रस्तुतकर्ता
गिरिजाशंकर तुरकासवाला

प्रस्तुतकर्ता
गिरिजाशंकर तुरकासवाला
महासचिव, श्री अग्रसेन महासभा ट्रस्ट, जयपुर

प्रकाशक :
राकेश जिन्दल, मनीष अग्रवाल

प्रथम संस्करण :
27 मार्च, 2016

मूल्य : एक सौ मिनट का वाचन

मुद्रक :
के.सी. प्रिन्टर्स
जयपुर

विमोचक :
श्री नन्दकिशोर गोयनका
मुख्य संरक्षक, अग्रोहा विकास ट्रस्ट, अग्रोहा, जि.-हिसार, हरियाणा

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

राकेश जिन्दल
तुरकासवाला भवन, 19-ए, गोपाल नगर
डाक्टर्स कॉलोनी वाली पानी की टंकी के पास
डीसीएम, अजमेर रोड़, जयपुर

मनीष अग्रवाल
तुरकासवाला भवन, 2-ए
टेगौर नगर, दो सौ फुट
बाईपास, हीरापुरा, जयपुर

गिरिजाशंकर तुरकासवाला
महासचिव
श्री अग्रसेन महासभा ट्रस्ट
19 ए, गोपाल नगर, पानी की टंकी के पास
डी सी एम अजमेर रोड, जयपुर

जय अग्रसेन !

अत्यन्त हर्ष है, कि अग्रवाल जाति एवं कुल प्रवर्तक महाराजा श्री अग्रसेनजी के प्रमाणिक इतिहास के बारे में, विभिन्न लेखकों की विरोधाभासी पुस्तको का अग्रभागवत के प्रकाशन के बाद पूर्ण विराम लग गया। सदियों से विलुप्त अग्रउपाख्यानम् का मूल ग्रंथ अब सि) महर्षि के द्वारा रामगोपालजी बेदिल के माध्यम से समाज को प्रसाद के रुप में प्राप्त हो गया। प्रकाशित अग्रभागवत को पढने एवं समझने के उपरान्त जयपुर नगर में पहली बार श्री अग्रसेन महासभा ट्रस्ट जयपुर के तत्वावधान में अग्रभागवत कथा का आयोजन 24 से 27 दिसम्बर 2015 को कराया गया। अति उत्साह के साथ समाज के बंधुओं ने अग्रभागवत को सुना। अग्रभागवत कथा के आयोजन के उपरान्त मन में यह धारणा बनी की इस ग्रन्थ को संक्षिप्त रुप में प्रकाशित करवाकर साधारण बन्धुओं तक वितरित कराया जावे, ताकि अग्र बन्धुओं को इसकी प्रमाणिक जानकारी आसानी से प्राप्त हो सके। इस हेतु सभी सत्ताइस अध्यायों का सार गर्भित सारांश इस पुस्तक में समावेश किया गया है। इस छोटी सी पुस्तक को साधारण व्यक्ति भी मात्र एक सो मिनट में आसानी से पढकर समझ सकता है। मुझे विश्वास है कि जो भी बन्धु इस पुस्तक को स्थिर मन से पढकर समझ लेगा उसे अपने कुल प्रवर्तक महाराजा श्री अग्रसेनजी के इतिहास पर किंचित भी सन्देह नही रहेगा।

किसी भी कार्य को करने की प्रेरणा ईश्वरीय देन होती है। मुझे भी

अग्रभागवत कथा को संक्षिप्त रुप में लिखने एवं प्रचारित करने की प्रेरणा अपने पारिवारिक संस्कारों से ही प्राप्त हुई है। मैं एक सामान्य व्यक्ति हूँ, अपने पितृेश्वरों को, माता पिता को एवं गुरुजनों को नमन करता हूं। समाज सेवा में, जीवन पर्यन्त सहयोगिनी रही पत्नी स्व. श्रीमती चन्द्रकान्ता देवी को नमन करता हूँ। मैं अपनी कला कौशल एवं साहस से ही इस अग्रभागवत कथा को "संक्षिप्त अग्र भागवत" के रुप में आपके समक्ष प्रस्तुत कर सका हूँ। (आप सभी पाठकों से निवेदन है कि आप इसका पठन करें अन्य बन्धुओं को पठन करावें एवं आपसी चर्चाओं के दौरान इसके बारे में बन्धुओं को अगवत करावें।)

जय अग्रसेन

मात-पिता और पितृेश्वरों से, बढकर , जग में कोई भगवान नहीं
चुका पाउं जो उनका ऋण, इतना मैं धनवान नहीं

गिरिजा शंकर तुरकासवाला

परम सम्मानीय गिरिजा शंकर जी,

आदरणीय, कर्मयोगी श्री गिरिजा शंकर जी तुरकासवाले सभी पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए निरन्तर गत तीस वर्षो से समाज सेवा में लगे हुये है। राज्य सेवा से सेवा निवृत हो जाने के उपरान्त तो पूरी तरह से समाज सेवा में समर्पित है। जयपुर नगर में प्रथम "अग्र भागवत कथा" का आयोजन भी आपके संकल्प से ही हो पाया है। आपके मन में "अग्र भागवत कथा" को संक्षिप्त रुप में एवं साधारण भाषा में प्रकाशित करवा कर अग्र-बन्धुओं तक पहुंचाने की प्रेरणा से निश्चित ही अग्र बन्धुओं को अग्र-भागवत एवं महाराजा अग्रसेन जी के बारे में प्रमाणिक जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

भगवान का दिया कभी अल्प नही होता ,
बीच में जो टूटे, वह संकल्प नही होता ।
अपनी हार को सदा अपने लक्ष्य से दूर रखा ,
क्योंकि जीत का कभी कोई विकल्प ही नही देखा।

समस्त परिवार जन

गिर्राज प्रसाद - कृष्णा देवी कृष्ण कुमार - तुलसा देवी,
दोलत मल - बिमला देवी अशोक कुमार - राधा देवी,
बबीता- राजेश जी कोठ्यारी राकेश जिन्दल - दीपीका,
मनीष अग्रवाल - श्वेता राधा गोविन्द, शुभम्, निकुंज,

गर्व, सरवांगी, रिषभ् एवं समस्त तुरकासवाला परिवार।

प्रिय बन्धुवर

महाराजा श्री अग्रसेन जी का प्रमाणिक साहित्य जो सहस्त्रों वर्षो की विलुप्तता के बाद प्रकाश में आया है। उसे जन जन तक सुगमता पूर्वक पहुंचाने के लिये आपके द्वारा ''संक्षिप्त अग्र भागवत'' का प्रकाशन अग्र समाज के लिये सराहनीय कदम है। इस पुस्तक के माध्यम से महाराजा श्री अग्रसेन जी के जीवन चरित्र के बारे में प्रमाणिक जानकारी आसानी से मिल सकेगी। आपका यह प्रयास साधूवाद का पात्र है। हम इस "संक्षिप्त अग्र-भागवत" पुस्तक को घर-घर एवं परिवार परिवार तक पहुंचाने का प्रयास तन-मन से करने का विश्वास दिलाकर आपके उज्जवल भविष्य की कामना करते हैं।

"अंधकार को क्यों धिक्कारे, अच्छा है एक दीप जलायें।"

हम मित्रगण एवं सहयोगी इतना ही कहना चाहेगें -

"मंजिल उन्ही को मिलती है, जिनके सपनो में जान होती है,
पंखों से कुछ नही होता, उनके होंसलों में उडान होती है।"

शुभेच्छु

दीपक गुप्ता	रेखा अग्रवाल	राधा गोविन्द खाटूवाला	राजेन्द्र नारनौली
गौरव अरसीवाला	संगीता गुडवाला	रमेश चन्द बैराठी	गोपाल कृष्ण सीपरिया
रेखा लडीवाला	मीरा मोदी	जगदीश नारायण ताडी	लाल चन्द मावावाला
सुशील अग्रवाल	कौशल्या शर्मा	जगदीश प्रसाद जैन	कमल किशोर थावरिया
किशन चूड़ीवाला	सीता देवी धौत्तीवाला	गोपाल दास गोयल	दामोदर गुडवाला
आकाश अग्रवाल	गायत्री गुडवाला	सतीश चन्द शर्मा	नरेन्द्र कुमार जैन
मुकेश बागड़ी	कविता गुप्ता	पवन मित्तल	लक्ष्मण लाल धींगपुरिया
उमाशंकर गुडवाला	सरोज नागोरी	बबीता चूड़ीवाला	कविता काला

संक्षिप्त अग्र भागवत कथा

कथा का पूर्व प्रसंग :- कथाओं एवं कहानियों की धुरी कल्पनाओं पर आधारित होती है, वहीं **"आख्यान"** की कथा-वस्तु ऐतिहासिक (सत्य) होती है। वेदों के रचियता **महर्षि वेदव्यास जी के प्रधान शिष्य सामवेद के आचार्य महर्षि जैमिनी** जी ने अपने मुखारविन्द से पाण्डव पुत्र अर्जुन के प्रपौत्र, अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के पौत्र अभिमन्यु पुत्र राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय को अधर्म एवं अहंकार के मार्ग से पुन: लोक धर्म एवं साधना का मार्ग प्रशस्त करने हेतु अग्रोपाख्यानम् की कथा सुनाई थी, इस कथा में धर्म एवं नीति के पालक सम्राट अग्रसेनजी के जीवन चरित्र का वर्णन किया गया है, जिसके सुनने मात्र से ही अधर्म एवं अहंकार की और भटके हुऐ राजा जनमेजय लोक धर्म एवं साधना का मार्ग अपना कर पुन: धर्मज्ञ राजा जनमेजय कहलाये।

महाभारत युद्ध की समाप्ति के उपरांत धर्मराज **युधिष्ठर** जी ने राज्य संभाला। श्रेष्ठ समय एवं उम्र के पडाव को ध्यान में रखते हुए महाराज युद्धिष्ठर ने अर्जुन के पौत्र एवं अभिमन्यु के पुत्र **परीक्षित,** जो महाभारत युद्ध से पूर्व उसकी पत्नि सुभद्रा के गर्भ में पल रहे थे को अपना राज्य प्रदान कर वन को चले गये थे। उस समय सम्राट परीक्षित के अधीन छोटे-छोटे **536** राज्य थे, जिन्हें गणराज्य कहा जाता था। सर्व प्रथम गण राज्य की स्थापना महाराजा अग्रसेन जी के शासन काल के दौरान प्रारम्भ की गई थी। महाराज परीक्षित धर्मानुकूल शासन करते थे। सम्राट परीक्षित के समय पर द्वापर युग की समाप्ति एवं कलयुग के आगमन के संध्याकाल का समय था, ऐसे में धर्मानुकूल सम्राट परीक्षित के शासन काल में कलयुग को प्रवेश करने हेतु राजा की शरण में जाना पड़ा। एक दिन कलि ने सम्राट परीक्षित के चरण पकड़ लिये। कलि के स्पर्श मात्र से ही सम्राट परीक्षित की बुद्धि बदल गई। कलि ने सम्राट से अपने रहने के स्थान मांगे तो **सम्राट परीक्षित ने कलि को**

चार स्थानों पर रहने की अनुमति प्रदान की।

1. **धूत**, 2. **मदिरा**, 3. **नारीसंग**, 4. **हिंसा**।

कलि इन चार स्थलों पर

1. **असत्य** 2. **मद** 3. **आसक्ति** 4. **निर्दयता** के रुप में रहने लगा।

कलि के प्रभाव से एक दिन सम्राट परीक्षित ने **जरासंध** के उस मुकुट को अपने सिर पर धारण कर लिया जिसे पांडव युद्ध में दुष्ट जरासंध पर विजय प्राप्त कर अपने साथ लाये थे। जरासंध के उस मुकुट को सिर पर धारण करने के साथ ही सम्राट परीक्षित की बुद्धि परिवर्तित हो गई, मुकुट के दुष्प्रभाव से धर्मज्ञ सम्राट के मन में शिकार के लिए वन में जाने की प्रेरणा उत्पन्न हो गई। गहन वन में उनके बाणो से बींधा गया मृग सम्राट के हाथ नहीं आया। पूरे दिन उस घायल मृग को तलाशते तलाशते थक कर सम्राट प्यास से व्याकुल होने लगे। अपनी प्यास बुझाने के लिए पास ही **ऋषि शमीक** के आश्रम में जा पहुंचे। उस समय महर्षि शमीक समाधि में लीन थे। मौन एवं समाधिव्रती मुनि शमीक से सम्राट परीक्षित ने अपने शिकार के विषय में जानकारी चाही। ऋषि की ओर से कोई जवाब नहीं मिलने पर कलि के प्रभाव से धर्मज्ञ सम्राट परीक्षित कुपित होकर वहां एक और पड़े **मृत सर्प** को अपने बाण की फाल से उठाकर ऋषि शमीक के गले में डाल दिया। इस कृतांत का जब **महर्षि शमीक के पुत्र महा तपस्वी श्रृंगी ऋषि** को पता चला तो उन्होने कुपित होकर सम्राट **परीक्षित को सात दिन में तक्षक नाग द्वारा विष दंशित** होने का श्राप दे दिया।

राजमहल पहुंच कर सम्राट परीक्षित ने जैसे ही अपने सिर से जरासंध का मुकुट उतारा उन्हे तत्काल अपनी भंयकर भूल का अहसास हो गया। **हाय! मुझसे घोर पाप हो गया,** यह निश्चिय कर प्रायश्चित व्रत धारण कर

मुक्ति के अनुसंधान का विचार करने गंगा के तट पर पंहुचें। **गंगातट पर महराजा परीक्षित को व्यासदवेजी के पुत्र "शुकदेव मुनि" मिले। भगवान शिव के अवतार शुकदेव जी** न केवल परीक्षित अपितु सर्वलोक के कल्याण के लिये ही यहाँ पधारे थे। परीक्षित ने शुकदेव जी के चरणो में साष्टांग प्रणाम कर उन्हे अपने पाप की कहानी सुनाई। कृपालु शुकदेव जी ने मरणासन्न परीक्षित को **"श्रीमद्भागवत"** कथा श्रवण का परम मार्ग प्रदान किया। शुकदेव जी की कृपा से ही सम्राट परीक्षित ने श्रीमद्भागवत का दिन रात सात दिन तक श्रवण किया। **सातवें दिन ऋषि के श्रापवश जब तक्षक सर्प ने सम्राट परीक्षित को डंसा तो उनका शरीर निश्चल हो गया और आत्मा परमात्मा में विलीन हो गई। तत्पश्चात परीक्षित पुत्र जनमेजय को सम्राट पद पर अभिषिक्त किया गया।**

महाराजा जनमेजय की पत्नी **"वपुष्टमा"** के दो पुत्र बड़ा **चन्द्रपीड** और छोटा **सूर्यापीड़** उत्पन्न हुआ। एक बार **ऋषि उतंक** ने जनमेजय को उसके पिता की मृत्यु तक्षक नाग के डसने से होने के बारे में बताया, तो उन्होने अपने मंत्रियों से इसकी पुष्टि की। बदले की भावना से धर्मज्ञ राजा जनमेजय नागसत्र यज्ञ करा कर तक्षक सहित सम्पूर्ण नागवंश को जलाकर भस्म करने का निश्चय कर सर्प विद्धवंश यज्ञ प्रारंभ किया, और मंत्रो के बल से लाखों करोड़ों सर्पों को यज्ञ कुण्ड में आहूत कर दिया। यह सब देख कर **नागराज वासुकी** अत्यन्त चिन्तित हुए और अपनी बहिन से याचना की कि भांजे "आस्तिक" को इस यज्ञ को रुकवाने हेतु प्रेरित करें। ऋषि आस्तिक यज्ञ मण्डप में पहुंच कर अपने वचनों व युक्ति से महाराज जनमेजय का क्रोध शान्त कर नागवंश को भीषण संकट से मुक्त कराया।

कुछ समय उपरान्त ही महाराजा जनमेजय ने **अश्वमेघ यज्ञ** करने हेतु निश्चय किया। इसकी जानकारी होने पर सर्वप्रथम **महर्षि वेदव्यास** जी

जनमेजय को समझाने के लिये राज महल पहुंचे। जनमेजय को बहुत समझाया कि पहले भी यही यज्ञ महाभारत युद्ध के रुप में विनाश का कारण बना था, परन्तु जनमेजय ने उनकी एक नहीं मानी और व्यास जी को अपमानित कर भेज दिया।

यज्ञ प्रारम्भ करने हेतु अश्व की बली दी गई। अश्वमेध यज्ञ के विधानानुसार उस क्षत-विक्षत अश्व के निकट महारानी वपुष्टमा ने शयन किया। जनमेजय के अहंकार के कारण इन्द्र ने छल किया जिसके कारण जनमेजय को ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे अश्व पुनर्जीवित हो गया और वह महारानी वपुष्टमा के साथ संयुक्त हो गया। इसी भ्रम से भ्रमित होकर जनमेजय विचलित हो गए, और पतिव्रता पत्नी, रानी वपुष्टमा को कुलटा कह कर ठोकर मार कर बाहर निकाल दिया। दुखियारी वपुष्टमा अपने दोनों पुत्रो सहित **कुरुवंश के सरंक्षक महर्षि वेदव्यास जी** के पास मदद के लिये उनके आश्रम में पंहुची। व्यास जी ने महारानी वपुष्टमा को सान्त्वना दी, परन्तु व्यास जी तो जनमेजय को पहले ही समझा चुके थे कि यह अश्वमेध यज्ञ नहीं करे, परन्तु उसने उनकी सलाह नहीं मानी। अत: व्यास जी ने जनमेजय को उचित मार्गदर्शन प्रदान करने हेतु अपने प्रधान शिष्य **महर्षि जैमिनी** जी को प्रेरित किया, क्यों कि क्रोधित व्यक्ति कभी भी अपनों की सलाह नहीं मानता।

महर्षि वेदव्यास जी के कहने पर जैमिनी जी ने राजा जनमेजय को अपने वचनो एवं युक्ति से शान्त किया तथा **अग्रउपाख्यानम् का ज्ञान देकर समझाया और जनमेजय को अश्वमेघ यज्ञ करने से रोक कर पुन: धर्म का मार्ग प्रशस्त किया।** इस अग्रउपाख्यानम् की कथा के श्रवण से सम्पूर्ण मानव जाति का उत्थान सम्भव होता है। यह ग्रंथ किसी जाति विशेष के लिए नहीं है। इस अग्रउपाख्यानम् में जब अग्रसेन जी के परम पुण्यमयी इतिहास का वर्णन जनमेजय ने सुना तो पुन: धर्म प्राप्ति की इच्छा

को दृष्टिगत रखते हुए एकाग्र भाव से महाराजा अग्रसेन जी के पुरुषार्थ की कथा विस्तार से सुनी। अग्रउपाख्यानम् में वर्णित महाराजा अग्रसेन जी की उक्त कथा के संकलन को अग्र-भागवत का नाम दिया गया है।

अग्रोपाख्यान में **27 अध्याय** है जिनमें महाराजा अग्रसेनजी के जीवन चरित्र उनकी नीतियों एवं शिक्षाओं का वर्णन किया गया है,प्रथम 22 अध्यायों में महाराजा अग्रसेन जी के जीवन चरित्र, उनकी वीरता के किस्से, उपलब्धियां एवं सेवाओं का वर्णन किया गया है। 23 से 27 वे अध्यायों में महाराजा अग्रसेन जी की शिक्षाए, नीतियां, धर्म-प्रचार, राज नीति,वानप्रस्थ आश्रम आदि के उपदेशो का वर्णन किया गया हैं। उनहीं 27 अध्यायों का संकलित यह ग्रन्थ ही "अग्र-भागवत" कहलाता है। अग्र भागवत के 27 अध्यायों का संक्षिप्त में सांराश निम्नानुसार है।

पहला अध्याय (उदय)

जैमिनी जी कहते है–हे जनमेजय! सूर्यकुल में उत्पन्न प्रतापपुर के राजा श्री **बल्लभसेन** की पत्नी विधर्भ कन्या **महारानी भगवती** ने **आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की प्रथमा तिथि, रविवार को मध्यान् काल** में अत्यन्त भाग्यशाली एवं तेजस्वी वंशकर पुत्र को जन्म दिया। जन्म के ग्यारह दिन के बाद राज पुरोहितों ने जब नवजात राजकुमार की कुण्डली बनाई तो ग्रहों की गणना के आधार पर बताया कि यह बालक अपने जीवन में शस्त्रों एवं शास्त्रों से भी आगे जाने वाले भाग्यशाली के रुप में नजर आ रहा है, इसीलिये इस बालक का नाम अग्र से शुरु कर अग्रसेन रखा गया।

इस प्रकार इक्ष्वाकु वंश की कीर्ति कथा तथा श्री अग्रसेनजी के जन्म का यह वृतांत जो भी व्यक्ति विशेष पर्वों पर सुनता है वह भाग्यशाली मनुष्य परम कीर्ति को प्राप्त करता है।

दूसरा अध्याय (ज्ञान)

जैमिनी जी कहते है–हे जनमेजय! राजा बल्लभ सेन जी ने पुत्र की प्रथम वर्षगांठ पर पुत्र जन्मोत्सव का आयोजन किया जिसमें सभी वेदवेत्ता और ब्राह्मनों एवं ज्योतिषविदों को आमन्त्रित कर उनका पूजन किया। इस अवसर पर विद्वजनों एवं ज्योतिषियों ने प्रसन्न होकर राजा बल्लभसेन जी से कहा कि राजन यह शोभा युक्त बालक बहुत से शास्त्रों का श्रवण करने वाला तत्व ज्ञान का विशेषज्ञ तथा ईश्वर भक्त होगा। इस लोक में इसके समान सत्यवान, शीलवान तथा तेजस्वी कोई और दूसरा नहीं होगा। बाल्य काल में अग्रसेन ने शिक्षा का **ज्ञान मालव निवासी महर्षि ताण्ड्य के आश्रम** में अन्य राजकुमारों एवं ऋषि कुमारों के साथ प्राप्त किया। (मालव क्षेत्र हरियाणा, राजस्थान की सीमाओं के पास वर्तमान पंजाब प्रान्त में है) अग्रसेन अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण किसी भी बात को एक बार सुनकर ही ग्रहण

कर लेते थे, इसीलिये गुरु के प्रिय शिष्य कहलाये। इन पर गुरु की विशेष कृपा के कारण अल्प समय में ही वे वेद शास्त्रो के ज्ञान में प्रवीण हो गये। गुरु की कृपा से बाल्य काल में ही एक साथ अनेक अस्त्र शस्त्रों के प्रयोग की विद्या के साथ अकेले ही अनेक शत्रुओं से युद्ध करने की कला में निष्पांत (पारंगत) हो गये। श्री अग्रसेन जी की-अलौकिक बुद्धि को देख कर ऋषि ताण्ड्य मुनि ने उन्हे संहार विधि सहित सम्पूर्ण अस्त्र–शस्त्रों का रहस्यमय ज्ञान प्रदान किया।

जिस दिन अग्रसेन चौदह वर्ष के पूर्ण हुए तब आश्रम में उनका स्वस्ति वाचन किया गया। उस समय तपस्वियों का वेश धारण कर समीप के वन में **ऋषिकन्या शुभा** विचरण कर रही थी। उसी समय आश्रम की ओर आते हुए **राजा रतिन्द्र** ने ऋषिकन्या को देखा और काम के वशिभूत होकर मीठे मीठे वचनों से भांति भांति के प्रलोभन देने लगा, उसकी दुर्भावना को ऋषि कन्या शुभा समझ गई और वह दूर भागने लगी, परन्तु नीच पापात्मा राजा उस पर बल पूर्वक झपट कर उसकी औढ़नी का छोर पकड़ कर अपनी ओर खींचा एवं बल पूर्वक पकड कर अपने रथ में बिठा लिया। ऋषि कन्या का सहायता हेतु रुधन भरा करुण स्वर सुनकर आश्रम के सभी कुमार तत्काल मदद के लिये वहां पहुंचे। गुरुकुल के कुमारों के हाथों अपना वध होने के भय से राजा रतिन्द्र रथ छोड़ कर भागने लगा। अग्रसेन जी ने दौड़ कर पापाचारी राजा के केश पकड लिये और कई थप्पड़ मारे। अन्य कुमारों ने भी उसके सिर पर लात घूंसों से प्रहार किये। सभी कुमार ऐसे निराधारी पापी राजा को मार डालना चाहते थे। परन्तु दयालु अग्रसेन ने अपने साथियों से कहा इसे जान से नहीं मारो, इसका मुख कीचड़ से मलीन करदो। उस राजा का मुख मलीन कर उसे उठाकर रथ में डालकर महर्षि ताण्ड्य के पास ले गये, महर्षि ने उस राजा को कहा कि "जा नीच जा", अधम पुरुष इस बार चला जा, दुबारा ऐसा कृत्य नहीं करना। इस प्रकार **महर्षि ताण्ड्य ने केवल**

"वाक-दण्ड" देकर उसके रथ को रवाना कर दिया। इसके बाद महर्षि ताण्ड्य ने अग्रसेन को सभी विद्यायें अर्जित कर लेने के कारण कहा कि तुम सभी शस्त्रों एवं शास्त्रों में दक्ष हो चुके हो। अब माता-पिता के पास जाकर उनकी सेवा पूजा करो, माता-पिता की सेवा से बढ़कर कोई सेवा धर्म नहीं है।

इस प्रकार महर्षि ताण्ड्य के आशीर्वचन तथा निर्देशों को गृहण कर श्री अग्रसेन जी ने हाथ जोड़कर गुरुदेव महर्षि ताण्ड्य की परिक्रमा कर मालववासी महर्षि ताण्ड्य के आश्रम से प्रस्थान किया।

तीसरा अध्याय (पुरुषार्थ)

जैमिनी जी कहते है-हे जनमेजय! एक रोज पाण्डवों के दूत महाराजा युधिष्ठर, मत्स्य नरेश विराट तथा पांचाल नरेश द्रुपद का संदेश लेकर प्रतापपुर के महाराजा बल्लभसेन के पास आये कि आप अपनी सेना सहित पाण्डवों के समर्थन में युद्ध के लिये सहायता करें। महाराजा बल्लभसेन जी ने दूत को आश्वस्थ कर भरोसा दिलाया कि जिस प्रकार पराक्रमी पाण्डव विजय के अभिलाषी हैं उसी प्रकार हम भी उनकी विजय के लिये कटिबद्ध है। इसके लिये हम अपने प्राण तक न्योछावर करने को तैयार है। युवराज अग्रसेन भली भांति सभी वार्तालाप सुन रहे थे। दूसरे रोज अग्रसेन भी सेना के साथ युद्ध में जाने के लिये तैयार हो गये। पिता के मना करने पर भी एक वीर योद्धा की तरह वो युद्ध में जाने के लिये तैयार हो गये। **"हिरण्यवती नदी" के किनारे पर भगवान श्री कृष्ण ने सभी राजाओं के ठहरने हेतु शिविरों का निर्माण कराया था** उसी में महाराज बल्लभसेन राजकुमार अग्रसेन के साथ रुके। युद्ध शुरु हुआ, वीरों में मुठभेड होने लगी, अत्यन्त भीषण एवं घमासान युद्ध होने लगा। **नौं दिनों** तक विनाशकारी संग्राम चलता रहा, **दसवें दिन भीष्म पितामह के बाणों से घायल होकर**

बल्लभसेन जी वीरगति को प्राप्त हो गये। पिता को वीरगती प्राप्त करने के बाद उनके स्थान पर कुमार अग्रसेन अपने पिता के स्थान पर युद्ध में भाग लिया। युवराज अग्रसेन अपने तीक्ष्ण बाणों से उस युद्ध भूमि में दारुण स्वरुप उत्पन्न कर यम-दण्ड के समान घोर तथा प्रज्वलित मुखवाले भयंकर बाणों की तीव्र वर्षा कर रथों सहित रथियों को, घोड़ों सहित सवारों को और हाथियों सहित गजरोहियों को आपने बाणों से बींदते हुए चारों और विचरण करने लगे। अग्रसेन का ऐसा साहसिक कृत्य देख कर कोरव सेना के बड़े बड़े वीर योद्धा कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, वृहद्वल, जयद्रथ आदि भी अग्रसेन के रणकौशल की प्रशंसा कर रहे थे। इस प्रकार आठ दिनों तक महाभारत के भीषण युद्ध में युवराज अग्रसेन ने अपनी अस्त्र शस्त्र विद्या का पूरा उपयोग किया।

युद्ध समाप्त हो जाने पर अग्रसेन जी को पितृ शोक में देख **भगवान श्री कृष्ण ने अग्रसेन से कहा - हे वत्स अग्रसेन! तुम्हारे पिता ने धर्म युद्ध में अपनी देह का परित्याग कर महावीर की गति को प्राप्त किया है,** अतः हे परमवीर तुम्हे संताप को त्याग कर, मन को शोक रहित तथा अविचल करना चाहिये। इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण के मन संताप-हारी वचनों को सुनकर अग्रसेन जी ने शोक त्याग कर पिता का श्राद्ध एवं दान आदि किये।

जैमिनी जी कहते है- हे जनमेजय! जो पुरुष अपनी विजय चाहता है, अपनी उन्नति चाहता है और शत्रु के हाथों अपनी अभीष्ट (गई हुई) संपत्ति छीन लाना चाहता है, उन वीरों के लिये यह उपाख्यान अत्यन्त उत्साह वर्धक है और शत्रुओं के लिए भयंकर है। यह उपाख्यान पुत्र की प्राप्ति कराने वाला एवं साधारण पुरुषों में भी पुरुषार्थ पैदा करने वाला है।

चौथा अध्याय (सन्तोष)

जैमिनी जी कहते है-हे जनमेजय! युद्ध समाप्ति पर महात्मा युधिष्ठर ने सभी भाईयों से कहा कि हमारे सहयोगी सभी राजाओं को अपने राज्य की सीमाओं तक सम्मान पूर्वक पहुंचा कर आओ। सभी राजाओं को विदा करते समय महाराजा युधिष्ठर ने कुमार अग्रसेन की प्रशंसा करते हुये कहा - कि मैने युद्ध भूमि में कुमार अग्रसेन के पराक्रम एवं महाबल को देखा है। इन्होंने **अपने पिता के वध का सन्ताप होने पर भी सैंकड़ो निशस्त्रों एवं दया याचकों को युद्ध स्थल में जीवन दान दिया है, यह अग्रसेन वास्तव में धर्मवीर है। अग्रसेन ने आत्मा पर भी विजय प्राप्त की है,** हे अग्रसेन! तुम मेरे लिये भीमसेन आदि भाईयों की तरह ही हो इसे अन्यथा नहीं लेना। तब अग्रसेन जी उपस्थित सभी राजाओ, गुरुजनो तथा भगवान श्री कृष्ण को प्रणाम कर धर्मराज युधिष्ठर जी से कहा कि हे महात्मने! मेरे उपर आप लोगों का असीम प्रेम है, इसके कारण ही आपको मुझमें इतने गुण नजर आ रहे हैं, यह कहते हुए **भगवान श्री कृष्ण से कहा कि हे हृषीकेश!** अब मैं आपके चरण कमलों का आश्रय कभी नहीं छोडूंगा, यह कहते हुए **ज्योंही अग्रसेन भगवान श्री कृष्ण के पास पहुंच कर चरणो में अभिवादन करने हेतु झुके, त्योंही भगवान श्री कृष्ण ने वन्दनार्थ झुके श्री अग्रसेन को उठाकर सीने से लगा लिया और कहा कि तुम अपने राज्य पर प्रतिष्ठित हों। भूमि, कीर्ति, यश तथा लक्ष्मी सत्य पर आश्रित रहने से तुम्हारा सदैव अनुसरण करेगी।** भगवान वासुदेव के आशीष वचनो को सुनकर कुमार अग्रसेन शीश नवाकर बारम्बार श्री कृष्ण को नमस्कार करने लगे। बाद में युधिष्ठर जी से अनुमति लेकर हस्थिनापुर से प्रतापपुर लोटे। प्रतापपुर लौटकर पिता का श्राद्ध कर्म एवं आत्म शुद्धि के लिये अनुष्ठान आदि कराये।

जैमिनी जी कहते है- यह आख्यान दीपक की भांति मोह का अंधकार मिटाकर, लोगों के अंत: करण रुपी गृह को ज्ञान के प्रकाश से भली भांति अलोकित कर देता है।

पांचवा अध्याय (षड्यंत्र)

जैमिनी जी कहते है-हे जनमेजय! गहन शोक में डूबे सभी ब्राह्मणों, मंत्री एवं राज परिवार के सदस्यों ने मिल कर **राज्य का उत्तराधिकारी श्री अग्रसेन जी को बनाने का निर्णय किया।** इस निर्णय से अग्रसेनजी के **चाचा कुन्दनसेन के पुत्र वज्रसेन** का मन ईर्ष्या से विक्षिप्त हो गया, एवं अपने **पिता कुन्दनसेन** से मिल कर **प्रतापपुर का राज्य हड़पने की योजना** बना कर अपने **अत्यन्त गुप्त सैनिकों की मदद से सोए हुए अग्रसेन को बंदी बना लिया एवं सुदृढ़ बेड़ियों में जकड़ कर बांध दिया।** उनके हितेषियों को सताने लगा। सुदृढ़ बेड़ियों में जकड़े हुए अग्रसेन जी ने मन ही मन क्रोध से जलते हुए, लम्बी लम्बी सांसे खींचते हुए भी हृदय को शान्त बनाये रख कर अपने काका श्री से कहा कि आप इस सम्पूर्ण राज्य को स्वीकार करें, मुझ पर भी आप शासन करें। मुझे न राज्य से कोई प्रयोजन है, न ही मैं राज्य का अभिलाषी ही हूँ। आप प्रसन्नतापूर्वक इस राज्य पर अपना अभिषेक करवाईये, परन्तु मुझे क्षमा करें। यह कहते हुए अग्रसेन जी काका कुन्दनसेन के पैरों में गिर पड़े। परन्तु कुन्दनसेन तो अग्रसेन जी के ऐसे वचन सुनकर और भी कुपित हो गया और अपने पैरो से अग्रसेन जी को ठुकरा दिया। अग्रसेन जी की ऐसी दशा देख कर सारे राज्य में हाहाकार मच गया, सभी ने कुन्दनसेन के ऐसे छल पूर्ण कृत्य के लिये धिक्कार कहा।

जैमिनी जी कहते है - हे जनमेजय! पहले भी इसी प्रकार कौरवों द्वारा पाण्डवों को विनिष्ट कर देने के लिये अनेको प्रयत्न किए गये थे, किन्तु उन सभी संकटो को लांघकर वे जल में कमल की भांति उत्तरोत्तर बढ़ते ही गये। हे राजन! संकट में धैर्य धारण करना ही विवेक है।

छठा अध्याय (संघर्ष)

जैमिनी जी कहते है–हे जनमेजय ! युवराज श्री अग्रसेन जी को बन्दी बना लेने के बाद कुन्दनसेन शीघ्रातिशीघ्र अपना राज्याभिषेक कराने हेतु अपने पुत्र वज्रसेन को आदेश दिया, कि इस अवसर पर हमारे विशेष सेवकों, मगधों, चरणों राज्य पुरोहितों को किसी भी प्रकार से प्रलोभन देकर बुलाओं और राजमुकुट एवं अन्य आभूषण तुम स्वयं लेकर आओ। वज्रसेन ने आदेशों के अनरुप सभी व्यवस्थायें की। मनोरंजन के लिये मदिरा, उन्मत्त तथा पारदर्शी वेशों में नृत्यांगनाओं को भी राज महल में आमन्त्रित किया गया। इस प्रकार कुन्दसेन की सभा में **"त्रिमद"** (राजमद, सुरामद, काममद) से उपस्थित सभी दरबारी उन्मत्त होने लगे। सम्पूर्ण राजमहल वासियों के मद में उन्मत्त होने पर युवराज अग्रसेन की पीडा से, पीड़ित हो रहे, उनके **दादा महाराजा वृहत्सेन** के प्रिय मित्र एवं **सहपाठी श्यामवर्णी आमात्य** जिन्होनें महाराजा बल्लभसेन को भी अपने पुत्र के समान स्नेह किया था। वो **आमात्य** वर्तमान मे **प्रतापपुर में कारागार मंत्री थे**, उन्होने मौका पाकर कारागृह में प्रवेश कर युवराज अग्रसेन से कहा कि पापी कुन्दसेन ने राज मोह मे आज सूर्य को अंधकार के बन्धन में बांधने का असफल प्रयास किया है। मैं आपके पितामह का सखा हूँ, आज तक इस बन्दी गृह की गुप्त सुरंग का राज अपके पितामह महाराज वृहत्सेन ने मेरे अलावा किसी भी सेवक को नहीं बताया था आज भी वह दरवाजा बन्द ही है। मैं आपको बन्धन मुक्त कर उसी गुफा से बाहर निकलने का मार्ग बता रहा हूँ। **इतनी विपत्ति के समय भी युवराज अग्रसेन ने कहा, कि मेरे अकेले की मुक्ति से क्या होगा, मेरी माता एवं छोटा भाई उस दुष्ट काका की शरण में है, वह उन पर अत्याचार करेगा, इस लिये मेरा यहां से निकलना मेरे लिये उपयुक्त नहीं है।** इस पर आमात्य ने कहा कि युवराज हमने उन्हे पहले ही यहां से निकाल कर सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया है। वो

अब पूरी तरह से सुरक्षित है, और राज्य की सीमा के बाहर निकल चुके है। यह सुनकर युवराज अग्रसेन, मन में प्रसन्न होकर उस गुप्त सुरंग के रास्ते बाहर जाने को सहमत हो गये। **जैमिनी जी कहते है कि तब आमात्य ने युवराज अग्रसेन के सभी बंधन काट दिये और तुरंत ही सुरंग मार्ग से निकाल कर दूर जंगल की ओर निकाल दिया।**

कुन्दनसेन के सिपाहियों ने देखा कि बंदीगृह से युवराज अग्रसेन गायब है, तो **"अग्रसेन भाग गया", "अग्रसेन भाग गया"** इस प्रकार कोलाहल करते हुए राज महल की ओर दौडे। ऐसा शोर सुनकर चारों और सैनिक आ गये, **सैनिकों ने आमात्य का वध कर दिया, परन्तु आमात्य तब भी हंसते हुए, अपनी विजयी मुस्कराहट ही दिखा रहे थे।** उस समय आमात्य अपने स्वामी की रक्षा के लिये प्राण देकर अपने आपको धन्य मान रहे थे। ऐसे समय में कुन्दसेन ने जब अग्रसेन के गायब होने के समाचार सुने तो क्रोध से उसके नेत्र लाल हो गये, उसने तेज गर्जना के साथ सम्पूर्ण सेना को आदेश दिया कि समीप के उस जंगल को चारों ओर से घेर कर उसमें आग लगा दी जावे। सेना ने राजाज्ञा से जंगल को चारों और से घेर लिया एवं सूखी लकड़ियों, घास फूस, पत्तों को एकत्रित कर जंगल में चारों ओर आग लगा दी। थके हुए अग्रसेन उस समय पर्वत की एक गुफा में छिप गये, और जलते हुए वन को देखते रहे, हवा का रुख अग्रसेन की गुफा के विपरीत दिशा की ओर हो गया। परिणाम स्वरुप सभी सैन्य कर्मी भागने लगे। **मौका पाकर अग्रसेन के फूफा अनंगपाल ने अग्रसेन के पिता बल्लभसेन के साथ अपने पूर्व सम्बन्धों का स्मरण कर अग्रसेन की सहायतार्थ वन में रुक गये।** अनंगपाल ने युवराज अग्रसेन से कहा कि दुरात्मा कुन्दसेन नगर की और नहीं लोटा है। और ऐसा ही हुआ, जैसे ही अग्नि का धुआं कम हुआ वज्रसेन ने अपनी सेना के साथ युवराज अग्रसेन पर हमला कर दिया, युद्ध में युवराज अग्रसेन की तलवार के आगे कोई भी सैनिक रुक नहीं पा रहा था।

युवराज अग्रसेन ने तलवार से कुन्दसेन के सारथी एवं करीबी रक्षकों को मार डाला और मुस्कराते हुए एक ही आघात से दुरात्मा कुन्दसेन के एक हाथ को काट डाला, यह कृत्य देख कर कुन्दसेन की सैना में हाहाकार मच गया। इस **युद्ध में अग्रसेन के फूफा अनंगपाल वीर गति को प्राप्त हो गये।** इस प्रकार युवराज अग्रसेन भीषण जंगली मार्गो एवं नदी को पार कर "बालुका वन" की समतल भूमि पर प्रवेश किया। (बालुका वन पंजाब हरियाणा, राजस्थान का सीमावर्ती मरू क्षेत्र है वहीं पर अग्रोहा धाम स्थित है।)

सातवां अध्याय (आश्रम)

जैमिनी जी कहते है-हे जनमेजय! बालुका वन में पहुंच कर युवराज अग्रसेन अत्यंत दु:ख के साथ पीड़ा महसूस कर रहे थे। बालुका वन में ही महर्षि गार्ग्य का आश्रम था। महर्षि गार्ग्य यज्ञ के लिये काष्ट लेने वहां वन में आये थे, उन्होने अग्रसेन को शोक संतप्त बैठे देखा तो उससे पूछा कि तुम कौन हो, तब श्री अग्रसेन ने मुनि के चरणों में अभिवादन करके कहा कि मैं प्रतापपुर के राजा बल्लभसेन का पुत्र अग्रसेन हूँ, और भाग्य के प्रकोप से यहां आ गया हूँ। कह कर **आप बीती पूरी कहानी मुनि को बताई। गर्ग मुनि ने अग्रसेन को समझाया कि तुम्हें तुम्हारों ने ही जो कष्ट दिया है उसको तुम पराक्रम के साथ ही दूर करो।** चिन्ता छोड़ो और उठो इस व्यथा से मुक्त होने के लिये संसार में समस्त प्राणियों के लिये मुनियों के आश्रमों के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। **अब तुम पत्र, पुष्प एवं फलों से सम्पन्न इस रमणीय आश्रम में आ गए हो। अत: तुम्हें यश, कीर्ति एवं सभी मनोरथों की पूर्णता निश्चित ही प्राप्त हो जावेगी। ऋषियों के आश्रमों मे ही निवास करके क्षत्रियों ने बल प्राप्त किये है। अत: तुम कुछ समय यहां रह कर उस परम विध्या का अभ्यास करो एवं अपने हृदय की दुर्बलता एवं भय का परित्याग करो, मै निश्चय ही ऐसा उपाय करुंगा कि तुम**

पूज्यनीय हो जाओगे। उसके बाद अग्रसेन पर्णकुटी में निवास करते हुए प्रतिदिन महर्षि गर्ग के श्री चरणों में नमन करते हुए उनसे ज्ञान कथाओं का श्रवण करने लगे।

आठवां अध्याय (तपस्या)

जैमिनी जी कहते है-हे जनमेजय! एक दिन पुन: अग्रसेनजी को पुरानी घटनाओं का स्मरण हो गया, तो वो जड़ से कटे वृक्ष की भांति शुष्क दिखाई देने लगे। अग्रसेन को चिंतित देख कर महामुनि गर्ग ने कहा कि राजन आप अपने हृदय को चिंताओं से मुक्त करो! क्योंकि चिंता पुरुषार्थ का विनाश करती है। अत: **मन में उत्साह बनाए रखना ही समृद्धि एवं सुख का मूल आधार है।** इस पर अग्रसेन ने मुनि से पूछा कि आप मुझे वह रहस्य बताईये जिससे मैं इस अपार दु:ख के सागर को पार कर सकूं। इस पर **मुनि गर्ग ने कहा कि मैं तुम्हें पूर्वकाल में महामुनि "माक्रण्डेयजी" द्वारा सुनाए गये आख्यान की कथा सुनाता हूँ।** जिसमें पूर्वकाल में एक **"सुरथ" नाम का नीतिवान राजा था,** कोलध्वंसी राजाओं द्वारा परास्त हो जाने पर उसका बल क्षीण हो गया था तब उसके बलवान, दुष्ट व दुरात्मा मंत्रियों ने राज्य की सेना तथा कोष पर अपना नियंत्रण कर लिया। तब दु:खी राजा सुरथ ने जो किया वह तुम भी सुनो।

राजा सुरथ चिन्ताग्रस्त हो कर जंगल में चले गये। वहां उन्हें **"समाधी" नामक एक वैश्य मिला।** जिसे उसकी दुष्ट पत्नी एवं पुत्रों ने धन के लालच में घर से निकाल दिया था। **दोनों जंगल में "मेघा मुनि" के आश्रम में गये** और मुनि के चरणो में नमन करके अपनी अपनी व्यथा विस्तार से सुनाकर अग्रिम मार्गदर्शन बतलाने हेतु निवेदन किया। मेघा मुनि द्वारा उन्हे ईश्वरीय महामाया का ज्ञान कराए जाने पर दोनों का वह भ्रम दूर हो

गया जो माया के मोह में उन्हे जकड़े हुए था, एवं वास्तविक ज्ञान प्राप्त हुआ।

सम्पूर्ण चर-अचर जगत महामाया के अधीन है वे सम्पूर्ण ईश्वरों की अधिश्वरी भी है, विद्या, ज्ञान, और शक्ति की देवी भी वही है, महालक्ष्मी भी वही है। अत: तुम उसी देवी की शरण में जाओ। वे ही तुम्हें जगत के समस्त ऐश्वर्य, भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करेगी। इस पर राजा सुरथ ने कहा-हे मुनिश्वर! मैं आपके ही आश्रित हूँ। अत: मुझे देवी के जिस स्वरुप की आराधना करनी चाहिये उसका विधान सम्पूर्ण रुप से बताइये। तब मेघा ऋषि ने कहा कि यह रहस्य परम गोपनीय है। परन्तु तुम्हारी भक्ति भावना को देखते हुऐ यह गोपनीय रहस्य मैं तुम्हें बताता हूँ। और कहा कि त्रिगुण मयी(सत, रज, तम), ईश्वरी, महालक्ष्मी, ही सबका आदि कारण है। वे ही इस सम्पूर्ण जगत को अपने दृश्य और अदृश्य रुपों से व्याप्त करके स्थित है। अत: तुम्हें उनकी ही पूजा करनी चाहिये, वे इंदिरा, कमला, महालक्ष्मी एवं रुकमाम्बुजासना आदि नामों से पूजी जाती है। ऋषि माक्रण्डेयजी ने बताया कि इस प्रकार महामुने मेघा मुनि के द्वारा अत्यन्त गोपनीय रहस्य जानकर राजा सुरथ एवं समाधि नामक वैश्य तपस्या के लिये वन में जाकर तपस्या की और मनोवांछित वरदान प्राप्त कर परम मोक्ष का ज्ञान प्राप्त किया। **इस प्रकार महर्षि गर्ग के द्वारा अग्रसेनजी को पूर्व काल के ऋषि मुनियों द्वारा उस समय के राजा और वैश्य को जो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया था का वर्णन सुनाया एवं यह भी बताया कि महालक्ष्मी का यह महात्यम अत्यन्त गोपनीय, गूढ़ और जप किये जाने योग्य है तथा हर तरह से जय प्रदान करने वाला है।**

गर्ग मुनि ने अग्रसेन जी को बताया कि महालक्ष्मी ही सर्व मंगल, मांगल्य, पुण्यदायी, श्रेष्ठतम्, परम कल्याणी, चिन्ता-शोकादि को शांत कर आयू बढ़ाने वाली एवं परम ऐश्वर्य का प्रदायक है। ये ही

सर्व शक्तियों में आत्मा स्वरुप व्याप्त है। अत: तुम भगवान विष्णु की प्रिया श्री महालक्ष्मी का पूजन करो।

जैमिनी जी कहते है - हे जनमेजय! इस प्रकार महामुनि गर्ग के वचन सुनकर **अग्रसेन ने कहा कि आपने जिस प्रकार बताया है। मैं उसी प्रकार श्री महालक्ष्मी को प्रसन्न करने हेतु जप एवं तपस्या करुंगा।** इस प्रकार अग्रसेन जी ने उसी आश्रम की माटी से श्री महालक्ष्मी की मूर्ति का निर्माण करके मंत्रोक्त विधि से स्थापना कर एकाग्रचित्त रुप से एक पांव पर खड़े होकर, हरि प्रिया श्री महा लक्ष्मी को हृदय में धारण करके अग्रसेन अहंकार से रहित, मौन व्रत का आश्रय लेकर, समाधिस्त हो, जगतजननी महा लक्ष्मी की स्तुति करते हुए ध्यान एवं तपस्या में लीन हो गये। इस प्रकार **तपस्या में रमे श्री अग्रसेन को ग्यारह सौ दिवस पूर्ण हो गए** तब जगत जननी महालक्ष्मी अत्यंत प्रसन्न होकर पद्मासन पर विराजमान, पीतांबर धारण किए हुए हाथों में शंख, चक्र व गदा धारे देवी महालक्ष्मी अग्रसेन के सम्मुख साक्षात प्रकट हो गई। आकाश जो अमावस्या के गहन अंधकार में डूबा हुआ था, वह मां लक्ष्मी के आगमन पर उनके दिव्य प्रकाश से प्रकाशित हो गया। तब अग्रसेन ने उस परम तेजमयी जगदम्बा मां महालक्ष्मी के साक्षात दर्शन किये। प्रसन्न होकर महालक्ष्मी ने अग्रसेन से कहा कि तुमने अपनी सेवा अर्चना से मुझे प्रसन्न किया है इस लिये मैं स्वयं तुम्हारे समीप प्रत्यक्ष आ गई हूं। हे वत्स ! तुम जो भी मागोंगे वह सब तुम्हे प्रदान कर मैं संतुष्ट होउंगी। तब अग्रसेन ने कहा हे मां ! आप तो कल्पवृक्ष के समान है आप सदा ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्रदान करने वाली देवी है। आप यदि वर देना ही चाहें तो कृपया दो वर दीजिये :-

पहला "**मेरी भक्ति सदा अविचल रहे, स्थायी रहे, अटल रहे, मेरे हृदय में जीव मात्र के लिए सदा दया का भाव बना रहे नित्य प्रति हर**

पल, मेरा ध्यान आपके श्रीचरणो में लगा रहे। सुप्त एवं स्वप्न में भी मेरा चित्त आपकी भक्ति में लगा रहे एवं जो भी जन आपका यथा संभव स्मरण करें, हे माते! आप उनका कभी परित्याग न करें।"

दूसरा हे माते! **मैं लोभ, मोह और क्रोध पर सदैव विजय प्राप्त करुं तथा मेरे मन व चित्त में सदा ही सत्य व तप विद्यमान रहें।**

जगदम्बा मां श्री **महालक्ष्मी ने कहा-हे वत्स अग्र! तुम्हारी स्वहित से परे मानवता के विकास की कामना अत्यंत श्रेष्ठ है।** मैं तुम्हें वरदान देती हूं कि तुम्हारी सभी अभिलाषाएं पूर्ण हो। इस प्रकार वरदान देकर महालक्ष्मी अन्तर्ध्यान हो गई एवं जगदम्बे मां लक्ष्मी का वरदान पाकर अति प्रसन्न श्री अग्रसेन महर्षि गर्ग के आश्रम में लौट आए।

जैमिनी जी कहते है - हे जनमेजय! श्री अग्रसेन जी का यह कथन है कि श्री महालक्ष्मी का यह स्तवन, सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला है। महालक्ष्मी की कीर्ति का भक्तिपूर्वक गान करने वालों के सभी मनोरथ पूर्ण होते है, इसमें किंचित भी संदेह नहीं है।

नवां अध्याय (पराक्रम)

जैमिनी जी कहते है - हे जनमेजय ! अग्रसेनजी को महालक्ष्मी का वरदान प्राप्त हो जाने पर जब वह गर्ग मुनि के पास गये तो गर्ग मुनि ने अग्रसेन से कहा कि अब तुम इस लोक में अपनी कीर्ति स्थापित करने हेतु उचित प्रयत्न करो। तब अग्रसेन जी ने मुनि से कहा कि मेरे पास धन नहीं है और बिना धन के राज्य एवं जन शक्ति नहीं मिल सकती तथा कोई सहायक भी नहीं है। तब मुनि गर्ग ने अग्रसेनजी से कहा कि मैने श्री वेद व्यासजी के श्रीमुख से यह वृतान्त सुना था कि **पूर्व काल में महाराजा मरुत्त ने सो यज्ञ करके दिव्य वर की प्राप्ति की थी। उन महाराजा मरुत्त के पराक्रम का वृतान्त तुम्हे सुनाता हूं।** पूर्व काल में महाराजा मरुत्त ने भी यहां एक महा यज्ञ किया था। जिसमें उन्होने सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणों को विपुल दक्षिणादि से सन्तुष्ट किया था। उसमें से बहुत बडा स्वर्णकोष इस भूमि में दबा पड़ा है। महाराजा मरुत्त ने सो यज्ञ कराने का संकल्प लिया तो इन्द्र भयभीत हो गये, उन्होने देवगुरु वृहस्पति को राजा मरुत्त का यज्ञ नहीं करवाने के लिए राजी कर लिया, तब राजा मरुत्त अपने संकल्प में दृढ होकर **वृहस्पति के भाई संवर्त मुनि को अपना ऋत्विज बनाकर सौ यज्ञ की अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण किया। हे अग्रसेन ! उन्हीं सूर्यकुल के महाराजा मरुत के यशस्वी वंश के तुम कुल दीपक हो।** ऐसे महाराजा मरुत्त द्वारा समर्पित यह विपुल धन जिसे ब्राह्मण ले जाने में असमर्थ थे वह इस धरा के आंचल में दबा पड़ा है, जो यहां विद्यमान है, तुम उसे ग्रहण करो। परन्तु अग्रसेन ने कहा कि दान में दिया हुआ धन जो ब्राह्मण ले जा सकने में असमर्थ होने के कारण छोड़ गये उस स्वर्ण को हे महामुने! मैं भला कैसे ले सकता हूँ। क्षत्रिय का धर्म तो दान देना कहा है, ग्रहण करना नहीं। ब्राह्मणों का यह धन मेरे लिए कष्टकारी होगा और एसा करने पर हे महामुनें ! इस जग में भला मुझसे अधिक निन्दनीय राजा और कौन होगा ? और फिर माताश्री एवं अनुज शौर्यसेन से रहित राज्य संरचना की कल्पना भी मेरे लिए धिक्कारणीय है। तब महर्षि गर्ग ने कहा कि

तुम धन्य हो तुमने बहुत ही श्रेष्ठ बात की है, किन्तु ब्राह्मणों द्वारा त्याग दिये गये, धरा में दबे पड़े, उस धन को ग्रहण करने के सम्बन्ध में जो तुम्हारी शंका है वह व्यर्थ एवं निर्मूल है। क्यों कि जिस समय ब्राह्मणों ने धन का परित्याग कर दिया, उसी समय उनका उस धन पर से स्वामित्व हट गया। धरती द्वारा धारण किये गये उस धन को, मानव द्वारा प्रयत्न पूर्वक अर्जित करने में किसी भी प्रकार का कोई दोष नहीं हैं। यदि इसमे किसी प्रकार का दोष हेाता तो भगवान परशुरामजी ने अपने शोर्य से इस पृथ्वी को जीत कर कश्यप ऋषि को दान में दे दी थी, उसके बाद ब्राह्मणों को दान में देदी, उसके बाद दैत्यों ने जीत ली फिर क्षत्रियों ने जीत ली, तो ब्राह्मणों का अधिकार स्वत: ही समाप्त हो गया। इस प्रकार **हे राजन! जिस समय, जिस राजा को, धरा के जिस भाग का, स्वामित्व प्राप्त होता है, उस समय उस पृथ्वी के समस्त धन पर उसका अधिकार होता है,** इसमें कोई संदेह नहीं है। अत: इन निर्मूल शंकाओं से विमुक्त होकर, उस धन को प्राप्त कर, तुम राज्य की संरचना करो। यह कहते हुए महर्षि गर्ग ने श्री अग्रसेनजी को सफलता का आशीर्वाद दिया एवं उस स्थल की जानकारी देते हुए बताया कि हे राजन! मेरे आश्रम के समीप ही मरुप्रदेश की वह भूमि है, जो बालू से परिपूर्ण तथा पश्चिम दिशा में फैली हुई है। **हे राजन सर्व प्रथम इस आश्रम भू पर मेरे द्वारा अपने राज्याभिषेक को प्राप्त करो फिर राज्य लक्ष्मी प्राप्त करने के उपरान्त इस भूभाग में यहां सुरम्य राज्य की सरंचना हेतु प्रयत्न करो। इस प्रकार राजा के रुप में महर्षि गर्ग ने श्री महालक्ष्मी की कृपा से युक्त महाबली अग्रसेन का राज्याभिषेक कर दिया।**

जैमिनी जी कहते है कि बालु और वन से परिपूर्ण उसी स्थान पर राजा श्री अग्रसेनजी ने एक सुन्दर पुरी का निर्माण करवाया, जो पुण्य भूमि थी, और अन्य पुरियों में श्रेष्ठ थी, वह पुरी आग्रेय के नाम से विख्यात हुई। (आग्रेयपुरी को आज अग्रोहा धाम के नाम से जाना जाता है)

दसवां अध्याय (आधार)

जैमिनी जी कहते है - **हे राजन ! उस भूमि से अर्जित किए गये स्वर्ण, रत्न, मणि एवं मुद्राओं से भरे कलशों सहित अपार धन सम्पत्ति को साथ लेकर अग्रसेन गर्ग मुनि के आश्रम पर आये तो सर्व प्रथम माता स्वरुप ऋषि पत्नी गार्गी एवं पिता स्वरुप महर्षि गर्ग के चरणो में साष्टांग प्रणाम कर आश्रम में प्रवेश हुए। आश्रम के द्वार पर ही ऋषि पत्नी गार्गी ने प्रज्वलित दीपों से प्रकाशित थाल हाथ में लेकर मातृवत अग्रसेनजी की आरती उतारी। उसके बाद अग्रसेनजी ने वहां पर एक दिव्य, रमणीय तथा मनोहरी नगरी का निर्माण कराने हेतु विश्वकर्माओं को आमन्त्रित किया। आमन्त्रित विश्वकर्माओं द्वारा निर्मित इस नगरी का नाम "आग्रेय" नगरी निर्धारित किया गया। बारह योजन लम्बी एवं चार योजन चौडी आयताकार आग्रेय नगरी में बड़े बडे द्वारों, नाना प्रकार के वृक्षो, चौड़े मार्गो, सड़कों, गलियां, अनेक चौराहों वन उपवनों उध्यानों, चारों और ऊंची चारदीवारियाँ, अनेको देव मन्दिरों गऊशालाओं, कुए, बावड़ी, पोखर आदि के साथ सुन्दर राजमहल का निर्माण शिल्प शास्त्रों के नियमों के आधार पर करवाया। अनेकों प्रकार से अभेद्य तथा सभी और से संवृत्त एवं सुरक्षित अस्त्र-शस्त्रों से युक्त शस्त्रागारों का कुशल विश्वकर्माओं द्वारा आग्रेय पुरी में निर्माण किया गया।**

आग्रेयपुरी में देश देशान्तरों से, चारों वर्णो के लोग, नर-नारी, एकत्रित होकर अपने बालकों तथा पालकों के साथ अग्रेय गणराज्य में बसने की इच्छा से वहां आने लगें। आग्रेय पुरी में बसने आने वाले सभी प्रजा जनो को महाराजा अग्रसेनजी ने प्रसन्नता पूर्वक अपने राज्य में यथा योग्य स्थान देकर बसाया। सम्पूर्ण नगरी बस जाने पर महाराजा अग्रसेन जी ने

विश्वकर्माओं का विधिवत पूजन करके विदा किया।

महाराजा अग्रसेनजी ने गर्ग मुनि की सम्मति के अनुसार ही सभी कार्य किये उनके कहने पर ही महाराजा अग्रसेन हाथी पर सवार होकर राज्य के प्रमुख मार्ग को पार करके नव निर्मित उस उत्तम राज भवन में प्रवेश कर सभी मांगलिक कार्य सम्पन्न किये। **आग्रेय पुरी के परमासन पर अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी को विराजमान किया एवं दिव्य राज्य सिंहासन पर महाराजा अग्रसेन तथा अन्य उत्तम आसनों पर महर्षि गर्ग एवं अन्य मंत्रीगण एवं सभासद बिराजे।** स्वर्णदंड से युक्त बसन्ती रंग का छत्र महाराजा श्री अग्रसेनजी के शीश पर शोभायमान हो रहा था। यौवन, सौंदर्य एवं ऐश्वर्य तीनों एक साथ महाराजा अग्रसेनजी को शोभायमान कर रहे थे।

जैमिनी जी कहते है – हे राजन जनमेजय ! इस महोत्सव में प्रतापपुर से आए लोगों की अगवानी कर महाराजा अग्रसेनजी ने विनम्रता पूर्वक पूछा कि आप लोगों का आगमन तो सुख पूर्वक हुआ है न? प्रतापपुर की प्रजा कुशल तो है न ? राज पुरोहित, सौम्य ऋषि, माता वैदर्भी भगवती तथा अनुज शौर्यसेन आदि कुशल मंगल तो है न ?महाराजा अग्रसेन के इस प्रकार पूछने पर वे उद्विग्न मन से अभिवादन करते हुए ही रो पड़े। आगन्तुकों ने उस क्रूर तथा भोगों में लिप्त कुन्दनसेन के द्वारा प्रजा को पीड़ित करने का पूरा वृतान्त सुनाया और यह भी कहा की वह कामाचारी प्रजा के हितो के विपरीत ही कार्य करता है वहां एक पल भी रहना उचित नहीं है। उनके ऐसे आचरणों से ही ऋषि सौम्य राजमाता वैदर्भी तथा शौर्यसेन को साथ लेकर प्रतापपुर को त्यागकर कहीं चले गये? कहां गये यह कोई भी नहीं जानता महाराज। यह सुन कर अग्रसेन भारी चिन्ता में डूब, शोकातुर होकर लम्बी लम्बी सांसे भरने लगे। माताश्री एवं अनुज के बारे में पता लगाने के लिए सोचने लगे। अन्ततोगत्वा महाराजा अग्रसेनजी ने ब्राह्मणों को प्रचुर मात्रा में धन देकर यह

संदेश दिया कि कृपया आप लोग मेरे अनुज शौर्यसेन एवं माताश्री भगवती देवी को खोज कर लाओ। खोज कर लाने वाले को विपुल संपत्ती प्रदान की जावेगी। महाराजा अग्रसेन जी की इस घोषणा के बाद अनेकों ब्राह्मण उन्हें खोजने के लिये सभी दिशाओं में निकल पड़े।

जैमिनी जी कहते है- हे जनमेजय! महाराजा श्री अग्रसेनजी अपनी प्रजा के साथ सदैव आनन्द मग्न रहते थे। उनके इस व्यवहार से अन्य राज्यों के नरेशों का हृदय ईर्ष्या से संतप्त रहता था।

ग्यारहवां अध्याय (उपक्रम)

महाराज जनमेजय ने महर्षि जैमिनी जी से पूछा कि महर्षि! क्या यह सच है कि श्री अग्रसेनजी का विवाह नाग कन्या से हुआ था ?यह असंभव घटना कैसे संभव हुई, मैं आपसे सादर निवेदन करता हूं कि मुझे इसका सारा वृतांत बताने की कृपा करें।

जैमिनीजी कहते है- हे राजन! अग्रसेन सदा सम्यक रीति से अपने गणराज्य का पालन करते थे। उन्होने महर्षि गर्ग को अपना पुरोहित बना लिया था इस कारण उनका शासन और भी मर्यादित था। राजा अग्रसेन न्यायावर्ती थे, समृद्ध थे, वैसे ही महाबली भी थे, उस राज्य के पुरोहित गर्ग मुनि थे, दोनों ही नीति शास्त्र में निपुण थे। एक दिन महर्षि गर्ग ने अग्रसेन जी से कहा कि हे राजन! नागलोक में नागराज महीधर द्वारा सुरक्षित एक रमणीय पुरी है जो मणिपुर (मणिपुर में मणी धारण करने वाले सम्पन्न एवं सुशोभित लोग निवास करते थे इसलिये उसका नाम मणिपुर रखा गया था) **के नाम से विख्यात है, नागराज महीधर धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की गतियों में पारंगत है। हे राजन! आपने उत्तम राज्य की सरंचना करली है, राज्य में सभी सुखी हैं, परन्तु गृहस्थ कर्म का भी परम कर्तव्य माना गया है।**

अतः आप वहां (मणिपुर) जाओ तथा नागलोक के राजा महीधर की कन्या माधवी जो सत्यव्रत में तत्पर, धर्मपूर्ण आचरण करने वाली, पुण्यपथ गामिनी तथा विवाह होने पर सर्व सुखों को प्रदान करने वाली है, को धर्मपत्नी के रुप में वरण करो। हे राजन! नागराज महीधर की तपस्विनी मनोरम छवियुक्त, वह नागकन्या माधवी भविष्य में आपका ही अनुवर्तन करने वाली है। तब अग्रसेन जी ने पूछा कि महर्षे नागलोक में जाना तथा उनसे मिलना भला किस प्राकर संभव होगा मुझे बताइये। तब महर्षि गर्ग ने इसका उपाय बताया कि वत्स अग्रसेन! **नागलोक के परमपूज्यनीय महामुनि उद्दालक तुम्हें वहां पर मिलेंगे, वे मेरे सखा है। वहां वे एसी चेष्टा करेंगे जिससे उन नागों का मन तुम्हारे प्रति कृपायुक्त हो जायेगा।** हे राजन! तुम मेरी आज्ञा से नागराज महीधर की पुरी मणिपुर में मन्नगराज महीधर के यहां जाओ तुम्हारा अवश्य ही कल्याण होगा। जब तक तुम वापिस आओगे, इस अग्र गणराज्य का मैं पुत्रवत पालन करुंगा तुम इस विषय में चिन्ता मत करो।

श्री अग्रसेन महर्षि गर्ग की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए उन्हें नमस्कार कर मणिपुर के लिये प्रस्थान किया। अग्रसेनजी ने **अंग बंग** को पार कर (सम्भवतया वर्तमान "मैहंगबंग") **नागलोक के द्वार ज्योतिषपुर** अर्थात् **तल लोक** से आगे बढ़कर विशालकाय "**अतल लोक**" को देखा, उसे पार करके चंपा के पुष्पों से सुशोभित "**वितल लोक**" में प्रवेश किया। आगे बड़ी बड़ी नदियों को पार करके सुन्दर फलों से लदे स्वर्णमयी "शमी" के वृक्षों से सुशोभित "**सुतल लोक**" को देखा जो रमणीय पर्वतों पर स्थित था। उसे लांघकर आगे आम्र वृक्षों से युक्त "**तलातल (महातल) लोक**" को देखा, जहां सीधे और लम्बे नारियल के वृक्ष दिखाई पड़ते थे। इस प्रकार अनेक शोभाओं से युक्त उस "**रसातल लोक**" नामक प्रदेश को निहारते हुए

नाग लोक की प्रमुख एवं रमणीयपुरी "**पाताल लोक**" में प्रवेश किया (पाताल लोक को वर्तमान में मणिपुर के नाम से जाना जाता है। इस लोक का निर्माण पृथ्वी मंडल को धारण करने वाले महाबली शेष-नाग के द्वारा किया गया था)। उसके बाद **लोहित नदी के किनारे वृक्षराज "वट" के नीचे विराजित महर्षि उद्दालक के निकट पहुंचे** (नागलोक की यह प्रमुख "लोहित नदी" वर्तमान में पर्वत माला से निकल कर आसाम के मध्य बहती हुई ब्रह्मपुत्र नदी में मिलकर बंगला देश में चली जाती है)। उनके चरणो में अभिवादन कर उन्हे प्रणाम किया - हे महातपस्वी मुनिवर! मैं महर्षि गर्ग का शिष्य अग्रसेन, गुरुदेव के आदेश से, यहां आकर आप मुनिश्रेष्ठ के दर्शन करके कृतार्थ हो गया हूँ। मैं प्रसन्नता पूर्वक आपकी वन्दना करता हूँ। हे मुनिवर ! मै आपके पास विशिष्ट कामना की पूर्ति हेतु महर्षि गर्ग द्वारा भेजा गया हूँ। प्रभो! आप उस उपाय को मुझसे कहिये, जो मेरे ग्राहस्थ कर्म का कारण बने।

मुनि उद्दालक ने कहा कि इस नागलोक के नागराज महीधर अधिपति है। वे ही रमणीय पर्वत मालाओं सहित सातों लोको क्रमशः तल लोक, अतल लोक, वितल लोक, सुतल लोक, तलातल/महातल लोक, रसातल लोक और पाताल लोक का पालन करते है। यह सातों लोक वर्तमान भारतवर्ष के पूर्वांचल में स्थित पर्वतीय प्रदेशों असम, मेघालय, मनिपुर, त्रिपुरा, मिजोरम, नागालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश के नाम से विख्यात है, तात्कालीन समय में इस क्षेत्र को नागलोक के नाम से पुकारा जाता था, वर्तमान समय में टूरिस्ट इंडिया रोड एटलस में इन सातों प्रदेशों/लोकों को "सात बहनों" के नाम से दर्शाया गया है। उनके द्वारा अलग अलग नागाधिपतियों को अलग अलग तलों पर अभिषिक्त कर दिया गया है। ये **सभी नाग जितात्मा है, इन्हें बल से नहीं जीता जा**

सकता, केवल बुद्धि से ही यह सम्भव होगा। उसके बाद अग्रसेन लोहित नदी में स्नान करके **मणिपुर में भगवान शिव के परमोत्तम लिंग "हाटकेश्वरम्" के दर्शन कर उन्हें नमस्कार कर उपवन में प्रवेश किया।** वहां नाग कुमारिया भी भगवान हाटकेश्वर की चम्पा के पुष्पों से स्तुति कर रही थी। वहीं उपवन में अग्रसेन ने अपने घोड़े को एक वृक्ष से बांधकर वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे।

बारहवां अध्याय (अनुराग)

जैमिनी जी कहते है - हे राजन! **"नागराज महीधर" की परम सुन्दरी रानी "नागेन्द्री" ने एक अत्यन्त रुपवती कन्या को जन्म दिया था। उसका नाम "माधवी" था, जो तीनों लोकों में सबसे सुन्दर थी।** यह कन्या परम सुन्दरी, शुभ गुणों से संपन्न एवं धर्म परायण थी। महाराज महीधर उसके विवाह के लिये चिन्तित थे कि इस गुणवती, परम सुन्दरी कन्या के लिए योग्य वर कहां से चुनें। तब उन्होने पुत्री माधवी से उसके स्वयंवर हेतु पूछा- **हे पुत्री! तुम्हें कैसा पति रुचिकर हे?** तो माधवी ने कहा **हे पिताश्री! मैं, नागों में से किसी को भी अपना पति नहीं बनाना चाहती क्यों कि वे सभी विषादि रसायनों को सिद्ध कर, मोह से ग्रसित हो चुके है।** तब नागराज महीधर ने कहा **पुत्री तुम्हें नागों के प्रति रुचि नहीं है तो देवताओं के राजा इन्द्र को अपने पति के रुप में वरण करलो,** वे तो सदैव ही कमनीय नारियों के प्रति कामुक रहते है, वे तो स्वयं ही तुम्हे प्राप्त करने के लिए, इस लोक में चले आएंगे। जैमिनी जी कहते है कि पिता के इस तरह के वचनो को सुनकर **माधवीजी कहने लगी कि मुझे इन्द्र की कदापि कामना नहीं है, क्यों कि वे तो सारे दोषों के कारण है।** वे तो तपस्या और दान के फल स्वरुप प्राप्त होने वाली दूसरों की उन्नति भी, नहीं सह पाते।

देवराज इन्द्र ने ही तो महर्षि गौतम की प्रियतमा पत्नी "अहिल्या" को पाने की कामना की थी। ऐसे कृतध्न इन्द्र को भला कौन नारी अपना पति बनाना चाहेगी। हे पिताश्री ! मनुष्य ही श्रेष्ठ है, इनमें ही आप मेरे योग्य किसी का विचार कीजियेगा।

तब, नाग कन्या माधवी अपनी अन्य सखी सहेलियों के साथ घिरी हुई, मणिपुर के उपवन में विहार करने के लिए चली गई । सुन्दर मोतियों के हारों से विभुषित नाग कन्याए हसंती गाती, हास-परिहास करती हुई क्रीड़ाओं के साथ उपवन में पहुंची। भ्रमण करते हुए थककर माधवी जी का शरीर पसीने से युक्त हो गया तो, फूलों के ढेर को सिरहाने रख कर लेट गई। **तभी सहसा इन्द्र ने वहां आकर सभी नाग कन्याओं को देखा और गुण सम्पन्न नागकन्या माधवीजी से देवराज इन्द्र ने कहा कि तुम सबको मै अपनी पत्नियों के रुप में प्राप्त करना चाहता हूँ।** अत: आप अपने नागभाव को त्यागिये और देवांगनाओं की भांति मुझे अंगीकार करके अक्षय यौवन को प्राप्त करें। **इन्द्र के इन वचनों को सुनकर राजकन्या माधवी ने उपहास करते हुए कहा कि हे देवेन्द्र ! मैं भले ही मर जाऊं किन्तु तुम्हें तो क्या? मैं किसी भी देवता को, अपने पति के रुप में वरण नहीं करुंगी।** यह सुनकर देवराज इन्द्र कुपित होकर वहां से चले गयें। सभी नागकन्याए आनन्द पूर्वक क्रीडा करते हुए सरोवर में उतर पड़ी और सरोवर के जल में चारों ओर घूम घूम कर क्रीडा करने लगी। **उसी समय सांडों सहित, गायों तथा बछडो का समूह, वहां आ पहुंचा और सरोवर को घेर लिया, और उसी समय एक सिंह भयावह घोरनाद करता हुआ वहां आ पहुंचा। जिसकी भीषण गर्जना से गायें, बछड़ों के साथ भयातुर होकर कांपने लगी।** यह सब देखकर सत्य संरक्षक , पराक्रमी तथा श्रेष्ठ धनुर्धर, वीर, श्री अग्रसेन का हृदय दया भाव से भर गया और पीड़ित मन से, वे गौ कुल एवं नागकन्याओं के संरक्षण हेतु विचार करने लगे।

श्री अग्रसेन जी ने उन गायों की रक्षा की भावना से, संरक्ष्य विधि
बाण चलाकर सिंह के चारों ओर बाणों के समूह का घेरा खड़ा कर दिया औ
अचानक आए इस संकट से सब गौ वंश एवं नाग कन्याओं को भय मुक्त क
दिया। उन्होंने हिंसक जीव की भी हिंसा ना करते हुए उसे केवल अवरु
करके उसके प्रति दया का भाव दर्शाया।

जैमिनी जी कहते है- हे महाप्राज्ञ जनमेजय! इस प्रका
गौवंश को परित्राण दिलवाने वाला यह कृत्य अत्यन्त दिव्यता पूर्ण तथा प्रीति
उत्पन्न करने वाला था। जिसने अग्रसेन के वैष्णव तेज को प्रकट किया
देखते देखते ही उन्हे नाग राज की कन्या माधवी का प्रिय बना दिया। जल
क्रीड़ा से निवृत होने के उपरान्त सुकन्या माधवी अग्रसेन जी के इस अद्भु
कृत्य से इस प्रकार अभिभूत हो गई, कि वे लगातार टकटकी लगाकर उन
उसी प्रकार निहार रही थी जेसे जगदम्बा रमा, भगवान विष्णु को निहार रह
हो। और मन ही मन अपने पति के रुप में निश्चय कर, उन्हे एकटक निहार
लगी। मैं उस पुरुष के पास जाऊ? या ना जाऊं? मन ही मन तर्क क
विचारने लगी। अग्रसेन जी भी उसे अपनी और दृष्टिपात करती हुई उ
मनोहरी नागसुन्दरी को देखकर विस्मित हो गयें, और हर्षित मन से वे उनक
आंखों मे उनके हृदय को पढ़ने लगे। आखों के परस्पर मिलते ही वे सोच
लगे कि ऐसी कामरुपिणी कन्या तो मैंने कभी पहले स्वप्न में भी नहीं देखी
नागसुता माधवी जी मन ही मन शंकर प्रिय पार्वती जी का ध्यान करती हु
प्रार्थना करने लगी कि हे दक्षकुमारी ! मैं आपको नमन करती हूँ! हे देवी
आप मुझे इन्हे ही पति के रुप में प्रदान कीजिएगा। सखियों ने जब माधवी ज
का यह हाल देखा तो उनकी इच्छा के बारे में पूछा, नाग सुन्दरी माधवी ज
परम प्रसन्न होकर लज्जा से मुख अवनत कर अपने पैर के अंगूठे के नख
पृथ्वी को इस प्रकार कुरेदने लगी, मानो अपने प्रियतम के गुणों क
लिख रही हो।

तेरहवां अध्याय (विभ्रम)

जैमिनी जी कहते है, हे जनमेजय! श्री अग्रसेन के प्रति माधवी जी के सम्मोहन का प्रसंग, गुप्तचरों ने, जैसा देखा था वैसा सब शीघ्र ही, जाकर नागाधिपति महीधर से यथावत निवेदित कर दिया। नागराज महिधर ने यह सब सुनकर **सेनापति "चित्रांग" को आदेश दिया कि वह कौन वीर विक्रमी है, जो इस सर्वतः संरक्षित राज्य में घुस आया है।** तुम अन्य योद्धाओं को साथ लेकर जाओं और उस पर शीघ्र विजय प्राप्त करो। अग्रसेन अपनी ओर आती हुई उस नागसेना और उसके कोलाहल को सुनकर आश्चर्य पूर्वक उठ खडे हुए। उन्होंने देखा कि दो, तीन, चार व पांच फनों वाले नाग तथा अन्य नाग भी कुपित होकर चतुरंगिणी सेना के साथ एकत्रित होकर वार करने हेतु आतुर है। और एक साथ रणक्षेत्र में वो श्री अग्रसेन पर टूट पड़े, उस समय उनके मुखों से भंयकर विष की वर्षा होने लगी थी। तब विषपूर्ण विषाग्नि की सहस्त्रों चिनगारियों से अपना बल क्षीण होता हुआ देख श्री अग्रसेन अपने पुरुषार्थ के बल से स्वयं की रक्षा करने लगे। श्री अग्रसेन, रणभूमि में अकेले ही पराक्रमी नागों से युद्ध करने लगे, अपनी तलवार से बत्तीसों प्रकार के पैंतरे दिखलाते हुए युद्ध में अकेले ही विचरण करते हुए दिखाई दिए। उनके समक्ष कोई योद्धा टिक नहीं पा रहा था। कवच से रहित, हाथ में केवल तलवार धारण किये हुए अग्रसेन, यह जानते हुए कि यह विपुल सैना अजेय है। महर्षि उद्दालक द्वारा पूर्व में ही उन्हें यह बताया जा चुका था कि वे बल से विजित नहीं किये जा सकते, तब भी वे निशंक भाव से, उनके समक्ष युद्ध के लिये डटे हुए थे। युद्ध भूमि में उन नाग वीरों का तिरस्कार करते हुए, अग्रसेनजी उसी तरह निर्भय खड़े रहे, जै से वन में सिंह अपने सामने हाथियों को देखकर भी अकेला ही निर्भय खड़ा रहता है। अन्ततोगत्वा महाबली अग्रसेन को, विषाग्नि से जला डालने का विचार कर मायावी नाग सैन्यपति **चित्रांग ने विष ज्वाला से युक्त पन्नगीमाया की सृष्टि की** और

व्यथित होकर चित्रांग ने अपने सैनिकों को आदेश दिया, कि माया का आश्रय लेकर युद्ध करो। **अन्ततः मायाधारी चित्रांग ने अपनी पन्नगी माया से श्री अग्रसेन को सर्पाकार बाणों से बांध लिया।** अग्रसेन जी के सारे अंग सर्पबंध से बंध जाने के कारण चेष्टा विहीन एवं असमर्थ हो गये। मौका पाकर सेनापति चित्रांग ने ईर्ष्या के साथ कठोर वचनो से कहा कि इसे शीघ्र मार डालो। सैनापति के इस प्रकार कहने पर नागों के महामंत्री ने कहा कि पहले इस पराक्रमी वीर के विषय में जान लिया जाए कि यह कौन है, और यहां क्यों आया है ? तभी इसका वध या पूजन किया जाना चाहिए। वैसे तो यह पुरुष श्रेष्ठ होने के कारण सर्वथा सम्मान किये जाने के योग्य प्रतीत होता है। क्यों कि सर्पों के सभी ओर से जकड़ लिये जाने के उपरान्त भी यह किंचित भी व्यथित नहीं है। हमें कुछ भी समझ नहीं आ रहा, अपितु अपने कुल के अभिमान, बल एवं पराक्रम के अनुकूल यह निशचित प्रतीत हो रहा हैं। महामंत्री के इस प्रकार नीतियुक्त वचनों के कहे जाने पर चित्रांग ने कहा ठीक है ऐसा ही होगा। इसके बाद नागपाश से बंधे श्री अग्रसेन को पहरेदारों के संरक्षण में सौंपकर सैन्यपति नागराज महीधर के राजभवन की ओर चले गये। श्री अग्रसेन जी ने सारी रात जागते हुए बिताई एवं सवेरा होने पर भगवान सूर्य देव से प्रार्थना करने लगे।

जैमिनी जी कहते है- हे जनमेजय ! **अग्रसेन के द्वारा सूर्य स्तोत्र के स्तवन करने से सूर्य देव प्रसन्न हुए और भगवान सूर्य देव की कृपा से श्री अग्रसेन नागपाश के बन्धन से विमुक्त हो गए।**

हे जनमेजय श्री व्यास मुनि ने कहा है कि जो एकाग्र चित्त होकर श्री अग्रसेन द्वारा किए गये इस पवित्र "सूर्य स्तोत्र" का पाठ करता है वह सभी बन्धनों से विमुक्त हो जाता है।

चौथा अध्याय (आराधन)

जैमिनी जी कहते है- हे राजन ! जलक्रीडा विहार करके राजभवन लौटी सखियों ने नागमाता नागेन्द्री से कहा कि हे माते ! राजकुमारी माधवी उपवन में उस दिव्य पुरुष के अदभुत कृत्य से मोहित होकर गुमसुम हो गई है, तब माता नागेन्द्री ने माधवीजी से बार बार पूछा तो पतिभाव का मन में स्मरण करते हुए, लज्जाशील, महाभागा नागसुता माधवी ने अपने मन की व्यथा माता को कह सुनाई। **हे माता! मुझे सरोवर के किनारे एक ऐसा पुरुष दिखाई दिया जो न केवल मानवों में, अपितु सभी देव, नाग, किन्नर, गंधर्व, यक्ष, ऋषि आदि में श्रेष्ठ तथा विशिष्ट पुरुष था। जिसे मैं मन से बहुत चाहने लगी हूँ। हे माते! मुझे पति स्वरुप में, वे ही स्वीकार है।** तब माता नागेन्द्री ने कहा कि पुत्री तुम्हें ना उसके कुल का पता, न कीर्ति का ज्ञान और न ही उसके पुरुषार्थ का ज्ञान फिर भला किन तत्वों के अधीन तुम इस प्रकार विमुग्ध हो रही हो। माधवीजी ने कहा कि **हे माते ! वे शिष्ट है! रुपवान है! मनोहर है! और देखने में ही प्रिय लगते है। ऐसा मनमोहक दिव्य पुरुष न देवों में, न ऋषियों में, न ही नागों में पहले कभी देखा गया। माते! वे कोई साधारण जीव नहीं हो सकते जिसने इस विख्यात एवं संरक्षित नागलोक में सैन्यपति चित्रांग के मस्तक पर पैर रख कर, अकेले ही अपने बलपूर्वक मणिपुर में प्रवेश कर लिया हो, वे निश्चित ही शत्रुमर्दन शूरवीर है।** माते ! **यदि मैं उन्हे पुनः नहीं देख पाउंगी तो मैं अपने प्राणों का ही परित्याग कर दूंगी। अब मैं उनके अलावा किसी अन्य देवता, नाग, नर, असुर या गंधर्व को पति रुप में कदापि वरण नहीं करुंगी।**

जैमिनी जी कहते है- कि पुत्री की भावना को जानकर नागेन्द्री अपने पति नागराज महीधर के पास जाकर कहा कि अपनी पुत्री युवा अवस्था में

प्रवेश कर चुकी है आपका क्या कर्तव्य है ? कृपया विचार कीजिये। हे नागेन्द्र माधवी ने वन में जबसे किसी पुरुष को देखा है, तब से ही वह उसके प्रति इतनी अधिक अनुरुक्त हो गई है कि अब अस्वस्थ तक हो गई है। तब नागराज ने कहा कि नागेन्द्री ! यह माधवी अभी कन्या है, इसलिये ऐसी बातें कह रही है, इस विषय में हमें किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं करना चाहिये। फिर हमारे मित्र देवराज इन्द्र भी माधवी का वरण करना चहते है। ऐसा संदेश हमे प्राप्त हुआ है और मैने देवराज इन्द्र को वचन भी दे दिया है, और देवताओं के विरुद्ध चेष्टा करने वाला मानव, क्षण में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। नागराज महीधर के इस प्रकार कहे जाने पर **नागेन्द्री ने पूछा- हे नागेश्वर! देवों का ऐसा कौनसा दण्ड भय इस नागलोक में आ गया है जो आप इस प्रकार कह रहे है। नागलोक का यही धर्म है, कि यहां कन्या स्वयंवरा होती है।** आपकी पुत्री माधवी ने, उस वैष्णव पुरुष में ही, अपना मानसिक संकल्प रखकर, उसका मन में वरण कर लिया है। देवराज इन्द्र को तो वो पहले ही नकार चुकी थी। अत: अपनी कन्या का विवाह उसके अनुकूल ही कीजिये, इसमें कोई दोष नहीं है। परन्तु नागराज इससे सहमत नहीं हुए तो महारानी नागेन्द्री पुन: अपने महल में लौट आई। सुकन्या माधवी की सभी सखियां माधवी को हृदय से लगाकर आश्वस्त किया कि हे सखी माधवी आप अपने मनवांछित पति के साथ वैसे ही रमण करोगी जिस प्रकार भगवान शंकर पार्वतीजी के साथ सदा मधुर क्रीड़ा में मग्न रहते हैं। अत: सभी नाग कन्याओं ने कहा कि अब देवी पार्वती का कृपा प्रसाद ही आपके मनोरथ को पूर्ण करेगा। सभी की मनोकामना पूर्ण करने वाली देवी पार्वती की आराधना करने के लिये सखियों के साथ वे नदी के तट पर पार्वतीजी के मन्दिर में जा पहुंची। माधवी विधिवत महादेवी पार्वती को दोनो हाथ जोडकर नमस्कार कर अपनी मनोकामना की पूर्ति हेतु आराधना करने लगी। माधवी जी की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव प्रिया पार्वती साक्षात

प्रकट हुई और प्रसन्नता पूर्वक बोली माधवी तुम जैसा चाहोगी, जैसी तुम्हारी अभिलाषा है तुम सब वैसे ही पाओगी।

नागकन्या माधवी ने माता पार्वती का आशीर्वाद प्राप्त कर यह संकल्प किया कि हे माते ! आपकी प्रसन्नता के लिये मैं बसंत आगमन के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथी को आपका विस्तृत पूजन - अर्चन करुंगी। अपनी भक्तिपूर्ण पूजन से आपको संतुष्ट करुंगी।

जैमिनी जी कहते है माता पार्वती की इस प्रकार प्रसन्नता प्राप्त होने पर सखियां नागकुमारी के साथ परिहास करने लगी। माधवीजी का हृदय हर्ष से प्रफुल्लित हो खिल उठा।

पन्द्रहवां अध्याय (मंथन)

जैमिनी जी कहते है- हे राजन ! श्री अग्रसेन के नागपाश से विमुक्त हो जाने का समाचार सुनकर नागराज महीधर अचम्भित हो गये, और विचार करने लगे कि माधवी तथा महारानी नागेन्द्री का जो विचार है वह निश्चित रुप से देवेन्द्र के कोप का कारण बनेगा। नागराज महीधर ने अपने नागबंधुओं तथा सभी श्रेष्ठ नागों को आमन्त्रित कर इस विषय में सभी के विचार जाने। तब मणिनाग ने कहा कि हे भुजंगपति ! नागों के विनाश का कारण नागराज सुता का विवाह ही होगा। क्यो कि श्री अग्रसेन से विवाह न करने पर नागसुता अपने प्राणों की आहूति देने को आतुर हैं, और नागेन्द्री रुष्ट होंगी, जिससे नागलोक में व्यापक असंतोष व्यापत हो जाएगा, और यह लोक विनाश की ओर प्रवत्त होगा, और यदि श्री अग्रसेन से विवाह कर दिया जाए, तो इन्द्रदेव रुष्ट होंगे। अत: हमें ऐसा कोई उपाय सोचना चाहिए जिससे अभी विवाह टल जावे। सभा में उपस्थित नागगणो ने अलग अलग विचार प्रकट किये।तब नागाचार्य ने सभी नागगणों को फटकारते हुए कहा- नागों ! तुमने इस विवशता को क्यो धारण किया है? क्या सचमुच तुम्हारी विष शक्ति

विनिष्ट हो गई है, कहां गया तुम्हारा पौरुष्य ? कहां गया तुम्हारा अभिमान ? कहां गई तुम्हारी दर्द भरी बातें ? हे महीधर, उस राजा अग्रसेन ने तुम्हारा क्या अनिष्ट किया है ? तुम्हें देवताओं के किस दंड का भय है ? तुमने देवताओं का क्या अपराध किया है ?जो तुम्हे अकारण ही दंड़ देंगे। तुमने देवताओं के अनुरुप क्या नहीं किया ? फिर देवों से व्यर्थ ही क्यों ड़र रहे हो ?

जैमिनीजी कहते है कि हे जनमेजय, जब नागराज राजभवन में इस प्रकार विचार विमर्श कर रहे थे, तभी नागपाश से विमुक्त हुए अग्रसेन वहां राजमहल में आ पहुंचे। राजमहल कमल की सुगन्ध से परिपूर्ण, दिव्य वृक्षो और लताओं से युक्त, अमृत से भरे नव कुण्डों और अनेक रत्नों से बना हुआ स्वर्णमय दीवारों से सोम्य प्रतीत हो रहा था।

उन दीप्तिवान भुजंगराज महीधर को देखकर उनके तेज से मोहित हो, श्री अग्रसेन मन ही मन विचार करने लगे कि अहो ! पन्नगराज का कैसा अद्‌भुत स्वरुप है ! कैसा अनोखा धैर्य है ! कैसा आश्चर्यजनक तेज है ! इनका संपूर्ण राज्य श्रेष्ठ लक्षणो से युक्त है। इस प्रकार एक ओर तो अग्रसेन नागराज के व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित थे, और वहीं अग्रसेन का तेजस्वी रुप देख कर नागराज को अग्रसेन में शिवजी के पुत्र कुमार कार्तिकेय की छवी नजर आने लगी, यह अत्यन्त ही शुभ लक्षण था।

हे जनमेजय ! उसके बाद नागराज महीधर के सामने श्री अग्रसेन ने कहा- हे नागराज ! मैं विशिष्ट कामना से यहां आपकी शरण में आया हूँ। उसके बाद नागराज ने उन्हे श्रेष्ठ आसन प्रदान किया, जिस पर अग्रसेन बैठ गये। तब नागराज महीधर ने पूछा - आप कहां से आये हो ? कौन हो ? किसके पुत्र हो ? यहां आने का आपका प्रयोजन क्या हैं ? हमने आपके जैसा पुरुष इस लोक मे पहले कभी नहीं देखा।

श्री अग्रसेनजी ने कहा - **हे नागराज ! देव, नाग, नर, यक्ष**

किन्नर, गंधर्व आदि सर्वलोकों, में विख्यात सूर्यकुल में उत्पन्न महाराजा वल्लभसेनजी का मैं पुत्र हूं, महालक्ष्मी की महत् कृपा से मेरे द्वारा स्वयं के राज्य की संरचना की गई है एवं महर्षि गर्ग के दिशा निर्देशों से नागसुता माधवी को वरण करने की कामना से ही इस नागलोक में आया हूँ, और उसके साथ विवाह करके ही यहां से जाऊंगा , यही मेरा अनुष्ठान है।

नागराज महीधर ने कहा कि हे मनुजश्रेष्ठ तुम्हारी यह कामना सर्वथा दुर्लभ है। हम शिवउपासक है और तुम विष्णु भक्त हो, तुम्हारे लोक मे तुम्हारे सजातीय बंधुओ का जो स्वभाव है, आचार व्यवहार है उसे मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। तुम्हारे यहां स्वजातीय जन सर्वदा अपने अन्य सजातीय बंधुओ के दु:ख में या आपत्ति में पडने पर हर्ष ही मनाते है। आर्यो के हृदय में परस्पर सौहार्द्ध अधिक देर तक नहीं टिकता। कुटुम्बीजन आपस में एक दूसरे को अपमानित करने और एक दूसरे को नीचा दिखाने की चेष्टा करते रहते है, दूसरों के भयों से अधिक स्वयं के जाति भाईयों से प्राप्त होने वाला भय अधिक कष्टदायक होता हैं। इसलिये तुम्हारे लिये नागकन्या की प्राप्ति असंभव है। तुम इस दुराग्रह को छोडकर जितना शीघ्र हो सके यहां से चले जाओ।

तब श्री अग्रसेन ने कहा - हे नागपति ! आप मेरे लिये पिता तुल्य और आदरणीय है, आप कुछ भी कह सकते है, किन्तु आपके कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी बुद्धि भ्रम में फंसी हई है, आप धर्म पर स्थित नहीं हैं, आपका यह कथन सही नहीं है, यदि आप स्वीकृति दें तो मैं यह स्पष्ट कर सकता हूँ। हे महामने ! अच्छी और बुरी प्रकृति के लोग सर्वत्र विद्यमान हैं तथापि देवों में, नागों में, मनुष्यों में तथा अन्य सभी लोकों में, विद्वान और दोष रहित पुरुष ही, देव, नाग, नर, गंधर्व, यक्ष चाहे कोई भी हो सदा ही पूजनीय और माननीय रहते हैं। हे नागेन्द्र ! जिनमें क्रोध का अभाव, सत्यभाषण,

अहिंसा की भावना, इन्द्रिय संयम, सरलता, द्रोह हीनता, अंहकार शून्यता, लज्जा, सहनशीलता, धैर्य और मनोनिग्रह ये गुण संभवत: दिखाई देते हों तथा जिनके कार्य धर्म विरुद्ध न हों, वस्तुत: वे ही सम्मान के अधिकारी होते हैं, और कन्यादान के योग्य पात्र भी। यहीं श्रुतियों का श्रेष्ठ मत है। हे नागेन्द्र ! जिस प्रकार भक्ति और ज्ञान भिन्न नहीं होते, भक्ति के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना भक्ति नहीं होती, शिवजी ज्ञान के प्रतीक है और विष्णु भगवान भक्ति के। इस प्रकार शिव और विष्णु भिन्न भिन्न नहीं है आपका ईश्वर के रुप मे भेद करना उचित नहीं है। ईश्वर तो एक है। इस प्रकार अग्रसेन ने बहुत से तथ्य नागराज के समक्ष प्रस्तुत किए।

अग्रसेन की बातों को सुनकर नागेन्द्र महीधर ने कहा – कि हे राजन! इस परम रहस्य को आपके द्वारा जिस प्रकार तथ्यों सहित शिव–विष्णु के एकात्म रुप को दर्शाया गया, उस परम अद्‌भुत, यथार्थ स्वरुप को आपसे सुनकर मुझे महान आश्चर्य हुआ है। वस्तुत: ईश्वर एक ही है, इनमें विभेद करना भ्रम है । आपने आज हमारे ज्ञान चक्षु खोल दिये।

जैमिनी जी कहते है- हे महामनीषी जनमेजय! श्री अग्रसेन युवा होकर भी, श्रेष्ठ बुद्धि से युक्त तथा ज्ञान विज्ञान में प्रवीण थे, इसीलिये उन्होंने, अपने तर्क पूर्ण आग्रह वचनों से सभी को निगृहीत करते हुए निरुत्तर कर दिया।

तब अग्रसेनजी ने कहा कि – हे नागेन्द्र ! नर और नागो में विरोध होने के कारण दोनों कुलों में संकरता आ जायेगी, नागवंश की इस सुकन्या से हमारे वंश में तेजस्विता का संचार होगा एवं दोनो ही कुल यशस्वी होंगे। महर्षि गर्ग एवं ऋषि श्रेष्ठ उद्दालक का भी यही मत है। इसीलिये दोनों कुलों के तेज से संभूत वंश के विकास की कामना हेतु मैं आपके इस नाग लोक में आया हूँ और अपने हृदय से दृढ़ निश्चय के साथ आपकी पुत्री नागकन्या माधवी देवी के साथ विवाह का प्रस्ताव आपके समक्ष पुन: रख रहा हूँ।

अग्रसेन जी की तात्विक बातों से प्रभावित होने पर नागेन्द्र महीधर ने कहा कि मैं तुमसे माधवी का विवाह नहीं कर सकता क्यों कि मैं देवराज इन्द्र से इस हेतु वचन बद्ध हो चुका हूँ और ऐसा करने से देवराज इन्द्र का आपके साथ वैर हो जावेगा इसमे कोई संशय नहीं है।

नागराज महीधर के ऐसे वचनो को सुनकर अग्रसेन ने कहा कि हे तात ! कृपया आप ऐसी बात न कहिए, देवता ऐसा छुद्र एवं निम्न स्तरीय कर्म करने वाले नहीं होते। वे तो कृतघ्न होते है। ना कायर होते हैं ना ही अंहकारी और ना ही मूर्ख। मै सदैव देवताओं के हित कार्यो में जिनसे देव प्रसन्न होते हैं सदैव तत्पर रहता हूँ। मन में उनका चिंतन करता हँ, उनमें भक्ति भाव रखता हूँ, यह जान कर भी वे मेरे साथ अकारण पाप पूर्ण दुर्व्यवहार क्यों करेंगे।

इसी घटना क्रम के मध्य वहां नागों के पूज्य महर्षि उद्दालक पधारे। **महर्षि उद्दालक ने कहा – ये श्री अग्रसेन जिस तरह शास्त्रों में विशेष पारंगत है उसी तरह से महान योद्धा भी हैं जो तुम देख चुके हो। हे नागराज! इस नागलोक में इनकी सोलहंवी कला के बराबर भी कोई नहीं हैं। नागराज! अग्रसेन और माधवी का विवाह संबंध सर्वथा धर्म पूर्ण तथा परम पुण्य दायक कर्म होगा। गुण, रुप, सम्पदा में दोनों ही समान है, और दोनों ही कुल समान रुप से धर्म को मानने वाले है। अत: इन्हे एक सूत्र "परिणयसूत्र" में बांध दिया जाना चाहिये और यह सब लोको के लिये भी हितकर है।** यह सुन कर सभी और हर्ष का स्वर सुनाई देने पर राज भवन में नागेन्द्री और नागकन्या माधवी जी आ पहुंची। और तब नागसुता माधवी जी ने लजाते हुए अग्रसेन जी की ओर दृष्टिपात किया तो श्री अग्रसेन ने भी उल्हासित अन्तरमन से उस सुन्दरी माधवी को आश्वस्त किया।

सोलहवां अध्याय (गरल)

जैमिनी जी कहते है- हे जनमेजय ! नाग कन्या माधवीजी से विवाह सुनिश्चित हो जाने पर अग्रसेन अतिथीगृह में उसी प्रकार हर्षित थे, जैसे नदी पार जाने की कामना करने वाले व्यक्ति को नाव मिल जाने से प्रसन्नता होती है। उसी समय एक अति मनोहरी, विलासनी, अत्यन्त ही महीन वस्त्र धारण किये हुए, सुन्दर अंगोवाली नाग कन्या ने अतिथी भवन में प्रवेश किया। रात्री के समय में अनायास आई उस सुन्दरी के समक्ष अग्रसेन अत्यन्त शंकित हृदय से उपस्थित हुए। उसे अकारण इस प्रकार कामुक स्वरुप में आई हुई देखकर उनके नयन लज्जा से मुंद गये। तब उस पन्नगी ने कहा – हे राजन ! मैं आपसे मोहित होकर, काम के वशीभूत होकर, आपकी सेवा मे आई हूँ। आप मुझे स्वीकार करें। मैने यह सारा श्रृंगार आपके लिये ही धारण किया है। मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि आप मेरा आलिंगन कीजिए। मै आपके प्रति अत्यन्त कामातुर हूं।

जैमिनी जी कहते है- हे राजन ! नागलोक के अतिथी भवन में उस नाग सुन्दरी की इस प्रकार लज्जाहीन एवं कामुक बातें सुनते ही श्री अग्रसेन अत्यन्त लज्जा से लज्जित हो कर दोनों हाथों से अपने कानों को मूंदकर कहने लगे कि हे सौभाग्यशालिनी ! तुमने जिस प्रकार की बातें कही वे सब सुनना भी मेरे लिये अत्यंत दु:ख की बात है। हे वरानने ! निश्चय ही, तुम मेरी दृष्टि में बहिन के समान हो। तब उस पन्नगी ने कहा – कि अपना तथा अपनी सखि का पति, दोनों ही समान माने गये हैं, सखी के साथ उसकी सेवा में रहनेवाली, दूसरी कन्यायें भी, पत्नी स्वरुप ही होती है। मेरी सखी माधवी ने आपको अपना पति निश्चित किया है अत: मैने भी मन से आपको अपना पति स्वीकार कर लिया हैं। अत: मै आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे प्रसाद स्वरुप नारी जीवन का अमृत प्रदान करें और मेरे साथ समागम करें। श्री अग्रसेन के बार बार मना करने पर वह पन्नगी क्रोध से अत्यन्त व्याकुल हो

उठी, उसका शरीर कांपने लगा, भौंहे टेढी हो गई और तब वह रोष पूर्वक अग्रसेन से कहने लगी तुमने घायल नारी की अपमान किया है तुम्हारा कृत्य नंपुसको की तरह है, तुमने याचना करने पर भी रतिकर्म न करके सर्वोत्तम रतिदान के साथ छलावा किया है अर्थात तुम धर्मशील नहीं हो। हे अग्र ! यदि मैं तुमसे रमण नहीं कर सकी तो मैं तुम्हे तीक्ष्ण विषबाणो से बींधकर गिरा कर तुम्हे जीतूंगी अथवा प्रेम से समागम द्वारा जीतूंगी, यही मेरा दृढ निश्चय है।

जैमिनी जी कहते है- हे धर्मज्ञ जनमेजय ! उस समय काम पीडित पन्नगी को देख कर श्री अग्रसेन अपने हृदय में श्री लक्ष्मण जी और सुर्पनखा के प्रसंग का विचार करने लगे। और कहा कि हे सुकन्ये कामान्ध होने के कारण आपके धर्म और अधर्म के निर्णय का विवेक नष्ट हो गया है अत: आप अपने आत्मबल के सहारे सामान्य हों, और अपने घर को लौट जाएं।

तब उस पन्नगी ने कहा- हे नर श्रेष्ठ ! मैने आपकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से ही यह कार्य किया है। मैंने आपको नारी की चपलता प्रेम, कामना, याचना, रोष, व्यंग, बदला, भय आदि अनेक रुप के दर्शन कराये तथापि हे सत्य पराक्रमी नरेन्द्र ! आपने अपने धर्म से विचलित न होकर, सभी पुण्य लोकों को जीत लिया है। इस प्रकार कहकर वह नाग रुपसी कामिनी स्वयं ही अपने घर को लौट गई, और तब श्री अग्रसेन उस अतिथि भवन में सुख पूर्वक रहने लगे।

जैमिनी जी कहते है- हे राजन ! **रात्रि समाप्ति के बाद सूर्योदय के समय पर ही "सर्पदंश" नामक नाग सहस्त्रों नागों सहित अग्रसेनजी के पास आया और कहने लगा कि मैं इस नागलोक का भुजंगपति सर्पदंश हूँ। नागराज की पुत्री माधवी को मैं पहले से ही पत्नी के रुप में प्राप्त करना चाहता हूँ इस लिये माधवी को मुझे ही पति रुप में वरण करना होगा। अत: तुम मेरी और से जाकर माधवी को यह संदेश देवो। इस**

पर अग्रसेन ने कहा- हे विषधर ! जिसने किसी नारी को वरण करने का संकल्प कर लिया हो, वह इस प्रकार अपनी पत्नी को भला दूसरे के लिये कैसे छोड़ सकता है। तदन्तर नागो ने अग्रसेनजी को चारों और से घेर लिया एवं विषाक्त फुफकारों से उनपर हमला कर दिया। विष जनित प्रहारों से अग्रसेन को चक्कर आने लगे तब उन्होने सेवकों से इस प्रकार कहा- हे रक्षक नागों ! मेरी आखों में तीव्र जलन हो रही है मै शिथिल हो रहा हूं, मेरे नेत्र घूम रहे है, मैं अभी विवश होकर गिर पड़ूंगा, तुम जाकर शीघ्र ही नागराज को यह बतादो। इतना कहकर **अग्रसेन ने "पिपीलिका" अस्त्र का प्रयोग किया, उस अस्त्र से निकली हुई चीटियां उन नागों के शरीर से लिपट गई, तब वे नाग उस स्थान को छोड़ कर भागने लगे। भुजंगपति सर्पदंश का जब सारा शरीर मांस हीन हो गया, तब चीटियां पुनः उसकी हड्डियों को फोड़कर उसकी चर्बी को चाट कर खोखला कर दिया। तभी नागराज महीधर के साथ महामुनि उद्दालक भी वहां आ पहुंचे, भुजंगपति सर्पदंश के इस प्रकार सारे ही अंगो को विकृत हुआ देखकर नागराज महीधर हंसने लगे और बोले हे भुजंगपति! आप तो युद्ध कला के विशेषज्ञ है फिर इस साधारण मनुष्य के सामने आप कैसे हताहत हो गये ?** यह सब देख महामुनि उद्दालक ने अपनी मंत्र शक्ति से क्षण भर में ही अग्रसेनजी की पीड़ा को नष्ट कर दिया। इस प्रकार महर्षि उद्दालक ने अग्रसेनजी को आशीर्वाद देते हुए कहा कि हे अग्रसेन ! तुम्हारी बुद्धि दृढ़ता पूर्वक धर्म में लगी हुई है। मै तुम्हे आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी बुद्धि समस्त जीव मात्र के प्रति धर्म में सदैव स्थिर रहें।

सत्रहवां अध्याय (अमृत)

जैमिनी जी कहते है- हे जनमेजय ! इस प्रकार रात्रि का घोर अंधकार दूर हुआ, सूर्यदेव उदित हुए, नागराज महीधर ने विवाह मे सम्मलित होने के लिये महर्षि गर्ग के साथ आये हुए मित्र देशों के राजाओं, ऋषि-मुनियों , आग्रेय गणराज्य के मंत्री गणो एवं अन्य नागरिकों का हाथ जोड़कर विधिवत सत्कार किया तथा कहा कि महोदय आप जैसे तेजस्वियों के आगमन एवं दर्शन से इस नाग लोक का अधंकार दूर हो गया। हे नर श्रेष्ठ आप मध्य दिवस के अन्तिम चरण में इन महात्माओं के साथ हमारे भवन में पधार कर विवाह कार्य को सम्पन्न करावें। तब मध्यान्ह काल में सुन्दर ध्वजा, छत्र, पताकाओं के साथ में स्वर्ण एवं मोतियों से जड़ित विशाल रथ पर आरुढ होकर अग्रसेन जी की बारात रवाना हुई उनके दाहिनी ओर ऋषिगण तथा साथ में आए हुए शेष लोग उनके पीछे-पीछे मंगल गान करते हुए चलने लगे। इस प्रकार श्री अग्रसेन जी के आगमन से अत्यंत प्रसन्न नागराज महीधर अपने घनिष्ट कुटम्बियों को हाथी पर बैठाकर , उन्हें साथ ले श्री अग्रसेन जी की अगवानी के लिये चले। **जब वर और कन्या दोनों पक्ष वाले नाग और नर एक द्वार पर आकर मिले तो ऐसा लगने लगा कि दो अलग-अलग नदियों की धाराए आकर परस्पर मिल गई हों। तब स्वयंवरा नागकन्या माधवी ने श्री अग्रसेनजी के उंचे कन्धों के मध्य शोभित गले मे परम सुंदर फूलों का हार डालकर उनका पति रुप में वरण किया।** तब नागराज महीधर ने कहा हे राजेन्द्र ! मेरी यह सुपुत्री माधवी अब आपकी सहधर्मिणी तथा सहचरी है इसे स्वीकार कीजिये और इसका हाथ अपने हाथों में लीजिये। इसके बाद नागराज महीधर ने अपनी अन्य कन्याओं को सम्मुख करते हुए कहा जंवाईराज ! आप मेरी इन अन्य कन्याओं के साथ भी पणिग्रहण कीजिये।

नागराज महीधर के इस प्रस्ताव को सुनकर श्री अग्रसेनजी ने लज्जा के साथ कहा- **हे नागराज ! मैं मन को वश में रखने वाला मनस्वी पुरुष, लोकधर्म का उत्तम आचरण करने वाला, माधवी देवी का वरण कर**

लेने के उपरान्त अब अन्य का पणिग्रहण नही कर सकता। पत्नी की अन्य बहिने मेरे लिये धर्म की दृष्टि से बहिने ही है, मुझे धर्म पथ पर चलने दीजिये। हे नागराज! पत्नी पति का आधा अंग होती है, यह श्रुति का स्पष्ट वचन है। मैं विवाह कर चुका हूँ, यहां मेरी प्रिय पत्नी माधवीजी विद्यमान है। **सोत का रहना केवल नारी के लिये ही अत्यंत दु:खों का कारण नही है अपितु पत्नी की सोत का होना पुरुष के लिये भी सदा ही दु:ख का कारण होता है। हे नागराज ! सौ कुएं खुदवाने की अपेक्षा एक बावडी बनवाना उत्तम है, सौ बावड़ियों की अपेक्षा एक यज्ञ कर लेना, श्रेयस्कर कहा गया है। सौ यज्ञ करने से पत्नी उपलब्ध कर ग्रहस्थ धर्म का पालन करना अति उत्तम कहा गया है।** उसमें भी एक ही पत्नी होना सर्वोत्तम हैं। मैं अब अन्य किसी का पति नहीं हो सकता।

यह मेरा सत्य वचन हैं। इसके बाद अग्रसेन और माधवीजी दोनों ने घी की आहूति देकर अग्निदेव की परिक्रमा की फिर वे दोनों सात पग साथ साथ चले। इस प्रकार अग्रसेनजी के साथ माधवीजी का विवाह सम्पन्न हो गया। **नागराज महीधर द्वारा अतुलित धन स्वर्ण, रजत मोती मूंगे आदि कन्यादान में देने के उपरान्त भी कम ही लग रहा था इसलिये नागराज महीधर ने निश्चय किया कि नागलोक के तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, (महातल) रसातल व पाताल इन सात लोको में से एक तल का राज्य अग्रसेनजी को अर्पित करु। ऐसा मन में निश्चय कर नागराज महीधर ने सभी नागों के समक्ष यह घोषित किया कि नागलोक का यह उत्तम तल आज से श्री अग्रसेन के "अग्रतल" के नाम से पुकारा जावेगा, जो तीनो लोको देवलोक, नागलोक, मानवलोक में प्रसिद्ध होगा अग्रतल वर्तमान भारत देश के पूर्वांचल में त्रिपुरा की राजधानी "अगरतला" के नाम से विख्यात है।** इस प्रकार नागकन्या माधवी का श्री अग्रसेनजी से विवाह सम्पन्न हुआ।

अठारहवां अध्याय (हर्ष)

जैमिनी जी कहते है- हे जनमेजय! विवाह के उपरान्त नागराज महीधर की सभा में मोतियों की चोकी पर नागकन्या माधवी को जामाता (जवांई) श्री अग्रसेनजी सहित बैठाकर उनका पूजन सत्कार इत्यादि कर नागलोक से विदा किया। **विदाई के पश्चात श्री अग्रसेन और माधवीजी महर्षि गर्ग के नेतृत्व में सभी सहयोगियों के साथ वापस आग्रेय पुरी की यात्रा के लिए रवाना हुए। आग्रेय पुरी पंहुचने हेतु उन्होने बीच बीच में सात रात्री विश्राम किया।** इस प्रकार परमानन्द से सम्पन्न सभी अपने गणराज्य आग्रेय पुरी सकुशल पहुंच गये। सम्पूर्ण आग्रेय पुरी यथोचित रीति से उनके स्वागत में जुटी हुई थी। इसी बी.च महाराजा अग्रसेन जी द्वारा पूर्व में माता वैदर्भी तथा अनुज शौर्यसेन को तलाश कर लाने के लिए विभिन्न दिशाओं में ब्राह्मणों को भिजवाया था वो माता वैदर्भी एवं अनुज शौर्यसेन को तलाश कर अग्रेय पुरी ले आये थे।

महर्षि गर्ग के सानिध्य में अग्रसेनजी ने माधवी के साथ पुण्य एवं मंगलमय मुहुर्त में आग्रेय नगरी में प्रसन्नता पूर्वक प्रवेश किया। तो निकट ही प्रतापपुर के पूर्व पुरोहित एवं माता वैदर्भी तथा अनुज शौर्यसेन और उनके संरक्षक सौम्य ऋषि को परिवारजनों के साथ देखा तो प्रसन्नता पूर्वक महाराजा अग्रसेन राजमाता वैदर्भी का आनन्द बढ़ाने के लिये माधवी सहित माता भगवती के चरणों में प्रणाम किया। लम्बे समय बाद जब माता वैदर्भी (महारानी भगवती) ने अपने पुत्र का आलिंगन किया तो उनके नयनों से हर्ष के अश्रु बह पड़े। अश्रु छलकाते हुए रुदन भरे शौर्यसेन ने श्री अग्रसेन के चरणों में वन्दन किया, उस समय उनसे कुछ बोला भी नही जा रहा था। नाग कन्या माधवीजी ने जब सासूमां के चरणों में अभिवादन किया तब माता वैदर्भी ने उन्हे उठाकर स्नेह से गले लगा लिया और कहा कि यह मेरी आदर योग्य ज्येष्ठ बहु है, इन्हे भवन के भीतर आदर सहित लेकर चलो।

पांच वर्ष के बाद आज माता वैदर्भी अपने पुत्र से बहु के साथ मिल कर अपने आप को धन्य कह रही थी। इन पांच वर्षो की अवधी में अग्रसेन जी ने स्वनिर्मित राज्य, परम ऐश्वर्य जगदम्बा महालक्ष्मी की कृपा, महर्षि गार्ग्य का दिशा दर्शन, श्रेष्ठ प्रजा एवं परम सुंदरी सुशीला भार्या नागकन्या माधवी से विवाह, बिछडे हुए माता वैदर्भी अनुज शौर्यसेन एवं पूर्व पुरोहितो को प्राप्त कर अत्यंत आनन्द मग्न हो गये।

इसके बाद वहां उपस्थित महिलाओं ने सभी मांगलिक कार्य, आनन्दित होकर नाचते-गाते हुए भांति भांति की क्रीड़ाओं के साथ सम्पन्न किये। महारानी माधवी ने सासूमां के श्री चरणो मे अभिवादन कर विनीत भाव से खड़ी हो गई तब माता वैदर्भी ने पुत्रवधु माधवी को प्रेम पूर्वक आशीर्वाद देते हुए कहा हे कल्याणमयी, गुणवन्ती वधु ! तुम सुख पूर्वक सौ साल आनन्द से बिताओ, पति के अनुकूल ही तुम्हारा राजरानी के पद पर अभिषेक हो, धर्म के प्रति तुम्हारे हृदय में स्वभाविक स्नेह हो, वशं वर्धन करने वाली बनो, और दीर्घ जीवी वीर पुत्रों की जननी बनो।

जैमिनी जी कहते है- हे जनमेजय ! आग्रेय गणराज्य की समस्त प्रजा स्वस्थ्य थी, ब्राह्मण वेदाध्यन में रत रहते थे, वृक्ष सदा फलित होते थे, लताएं सदा पुष्पित रहती थी, वहां के पुरुष सत्यव्रती और नारियां पति परायणा तथा सेवा भावी थी, गोवंश में बछड़े दूध पीकर तृप्ति पर्यन्त ही गायों के थनों से अलग होते थे। वहां के नर नारी जगमाता महालक्ष्मी के चिन्तन के अतिरिक्त किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करते थे। पूरा राज्य पुण्य, धन, सुख, और धर्म से परिपूरित था। हे परम जिज्ञासु जनमेजय ! जो प्राणी नागसुता सहित श्री अग्रसेन के इस पावन चरित्र को सुनता - सुनाता है उसके सम्पूर्ण पाप विनिष्ट हो जाते है, इसमें कोई संदेह नहीं।

उन्नीसवां अध्याय (सन्धि)

जैमिनी जी कहते है- हे जनमेजय ! महाराजा अग्रसेन चारों वर्णो को अपने अपने कर्म में स्थापित करके उनकी सदैव धर्मपूर्वक रक्षा करते थे। सभी प्रणियों के प्रति समभाव रखते थे। सभी लोगों के प्रेम पात्र थे।

हे जनमेजय ! अचानक देवराज इन्द्र ने आग्रेय पुरी में वर्षा बन्द कर दी। महाराजा अग्रसेन ने श्रृद्धापूर्वक संचित अन्न के भण्डार जनता के लिए खोल दिये। परन्तु भविष्य में वर्षा के बिना अन्न कैसे उत्पन्न होगा। इस पर अग्रसेन ने कहा कि प्रजाजनों ! यदि देवराज इन्द्र हमारी जल बरसाने के लिए की गई प्रार्थना को अन्यथा लेंगे। और हमारी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेंगे तो मैं समस्त प्रजा की रक्षार्थ कोई उत्तम उपाय करुंगा। तब महारानी माधवी ने विनीत पूर्वक निवेदन करते हुए कहा कि हे नाथ! **देव कृपा पर आश्रित होकर के मनुष्य को कर्म का कदापि परित्याग नहीं करना चाहिये। मनुष्य स्वयं प्रयत्न करके जो अर्जित करता है उसे ही तो पुरुषार्थ कहते है।** हे नरेन्द्र ! जैसे वर्षा के बादलों में जल है वैसे ही नदियों में भी तो जल है, बादलो का जल देव कृपा पर संभव है, जबकि नदियों का जल स्वयं के प्रयत्न से सिद्ध किया जा सकता है। जैमिनी जी कहते है राजरानी माधवी देवी की इस योग्य सलाह के अनुकूल निर्णय कर अग्रेय जनों ने जल प्राप्त करने के लिए नहरे बनाकर नहरों के माध्यम से जल लाकर आग्रेय पुरी की प्यासी धरा को पुनः प्रफुल्लित किया। आग्रेय राज्य की प्रजा अत्यंत हर्षित होने लगी। इसी बीच किसी देवदूत ने देवलोक पहुंच कर इन्द्र से कहा कि आग्रेय जनो द्वारा वर्षा नहीं होने पर भी किस प्रकार नदियों से जल प्राप्त कर, अपनी धरा को तृप्त कर, फसलें खड़ी कर ली हैं। इतना सुन कर **देवराज इन्द्र ने कुपित होकर कहा, देव इच्छा से पुरुषार्थ का प्रबल होना देवेन्द्र का अपमान है।** इस लिए कुपित होकर देवराज इन्द्र ने अग्निदेव को संबोधित करते हुए कहा कि आप आग्रेय पुरी जाए और वहां की सारी लहलहाती फसलों को अपनी दृष्टि से भस्म कर डालें, और अग्नि देव ने ठीक वैसा ही किया। अचानक

लहलहाती फसलों को जलते हुए देख कर वहां के निवासियों ने विभिन्न उपायों से अग्नि को शान्त बुझाया। **त्रिकालदर्शी महर्षि गर्ग ने अपने तपोबल से सम्पन्न दिव्य दृष्टि द्वारा देखकर महाराजा अग्रसेन को वास्तविकता बताई कि इन्द्र देव ने अग्नि देव को आग्रय पुरी के वैभव को भस्म करने के लिये भिजवाया है।** हे राजन देवराज इन्द्र के मित्र नागराज महीधर ने जिस प्रकार अपनी कन्या का विवाह आपके साथ कर दिया इस लिये इन्द्र हीन-भावना से ग्रसित होकर ग्लानिभाव से यह सब किया हैं। तब महाराज अग्रसेन ने कहा कि महर्षे! मैं तो शरीर से सभी देवताओं के हितकर्मो में ही तत्पर रहता हूं ! मन से उन्ही का चिन्तन करता हूँ ! उनमें भक्ति भाव रखता हूं ! यह सब जानकर भी वे एसा अनर्थ क्यों कर रहे है? **अग्रसेन ने कहा कि हे महर्षे ! हम लोग देवताओं की मंगलकामनाओं को पूर्ण करने के लिये ही तो मानव रुप में आये हैं। अत: देवताओं को तो हमारी रक्षा करनी चाहिये। यदि देवताओं में कामनावश द्वेष और लोभ लक्षित होता है तो फिर उनमें देवत्व का अभाव निश्चित ही है। जिसके कारण उनकी वह शक्ति हम मानवों पर कोइ बुरा प्रभाव भला कैसे दिखा पाएगी?** महर्षे ! जिस अनुपम तेज से देवगण संयुक्त है वही अनुपम तेज उन्ही की कृपा से हममें भी विद्यमान है, अत: आपकी कृपा और आत्मबल के सहारे मैं एक क्या अनेकों वज्रधारियों से युद्ध कर सकता हूँ। यह सोच कर अग्रसेन सर्वलोक की अधीश्वरी महामाता महालक्ष्मी की शरण में एकाग्रचित्त होकर उनसे प्रार्थना की। **जगजननी महालक्ष्मी प्रकट होकर अग्रसेन को वरदान दिया कि हे वत्स! मैं तुम्हें इन्द्र के भय से मुक्त करती हूँ, मैं उनके अस्त्रों की शक्ति को क्षीण कर दूंगी। हे नृपसिंह ! तुम्हें आज इन्द्र के भयंकर वज्र से भी भयभीत नहीं होना है , मै तुम्हें उस भय से मुक्त करती हूँ।** इसके बाद अग्रसेन महालक्ष्मी को नमस्कार करके अपने श्रेष्ठ रथ पर अरुढ होकर, देवगणो का सत्कार करते हुए देवराज इन्द्र को युद्ध का आव्हान किया। तब देवराज इन्द्र सिंह के समान गर्जना करते हुए अग्रसेन के रथ पर तीव्र बाणो की

वर्षा करने लगे, अग्रसेन ने उन सभी बाणों का काट दिये। तब सहसा इन्द्र ने अग्रसेन के धनुष को काट डाला, रोष से भरे हुए देवराज इन्द्र ने तीखे बाणो से अग्रसेन को कम्पित कर जोर जोर से हंसने लगे। यह सब देख कर पृथ्वी कांपने लगी, पर्वत हिलने लगे, चारो और आंधी चलने लगी उल्काएं गिरने लगी, देवराज इन्द्र और महाराजा अग्रसेन दोनो के इस संग्राम को देखकर सभी आश्चर्य चकित थे। उस समय मुनिगण जगत की हितकामना के लिये मंत्रों का जाप करने लगे। तदनंतर युद्ध के मध्य देवर्षि वृहस्पति को खड़ा हुआ देख दोनो महाबली वीर रथों से पृथ्वी पर उतर आए। दोनों ही वीरो ने हथियार डाल दिये, तथा देवगुरु वृहस्पतिजी को प्रणाम किया। **वृहस्पतिजी ने उन दोनों का हाथ थाम कर उनसे पूछा "आप लोग! किसलिये इस दरुण कर्म में प्रवृत्त हो गये।" युद्ध तो सदैव ही विनाश का कारण होता है।** आपको तो युद्ध से निवृत्त होना चाहिये, श्रेष्ठ पुरुष किसी भी दशा में युद्ध की प्रशंसा नहीं करते। अत: संधि के अतिरिक्त अन्य और कोई उपाय नहीं है।

तब देवराज इन्द्र ने कहा- हे देवर्षि ! मैंने यह सब श्री अग्रसेन के शील की परीक्षा लेने के लिये किया था, अब मैं इन नरश्रेष्ठ के साथ ऐसी मैत्री करना चाहता हूँ जिसका कभी अंत न हो।

श्री अग्रसेन ने कहा- हे देवराज ! मैं आपकी मैत्री पाकर धन्य हो गया हूं, मैं आपको मस्तक नवाकर प्रणाम करता हूँ, हे महेन्द्र ! देवगुरु वृहस्पतिजी सहित आपका स्वागत है, आप मेरा आतिथ्य स्वीकार करें। हम आपका विधिवत पूजन करेंगे। **सुरश्रेष्ठ इन्द्र ने कहा हे अग्र ! आप मानव होकर भी देवो के समान तेज से सम्पन्न हो। मित्र ! तुम मानव मात्र में विशेष लोकप्रिय होगें। तुम अग्रसेन के नाम से ही विख्यात रहोगे, और तीनों लोको में तुम्हारी अनुपम कीर्ति का विस्तार होगा।** जैमिनी जी कहते है कि हे जनमेजय ! इस प्रकार वरदान देकर इन्द्र एवं वृहस्पति जी अन्तर्ध्यान हो गये।

बीसवां अध्याय (विकास)

जैमिनीजी कहते है- हे महात्मा जनमेजय ! सर्वगुण सम्पन्न नागसुता माधवी को भार्या के रुप में पाकर श्री अग्रसेन व मनोवांछित पति के रुप में, नरश्रेष्ठ अग्रसेन को पाकर माधवी देवी वैसे ही अत्यंत आनंदित थे, जैसे पूर्व काल में श्री रामचंद्रजी - सीताजी के साथ तथा देवराज इन्द्र - पुलोमकुमारी शचि के साथ प्रसन्न थे। राजरानी माधवीजी ने अपनी सेवा , गुणो , विनम्रता एवं संयम से तथा सभी कार्यो से देव, पितृ, पति, सासूमां, संबंधी, परिजन, पुरवासी आदि सभी को संतुष्ट किया।

हे महात्मा जनमेजय ! महाराजा श्री अग्रसेन जी ने नागसुता माधवी देवी के गर्भ से **अट्ठारह पुत्रों 1. विभुसेन 2. विक्रमसेन 3. अजेयसेन 4. विजयसेन 5. अनलसेन 6. नीरजसेन 7. अमरसेन 8. नगेन्द्रसेन 9. सुरेशसेन 10. श्रीमन्तसेन 11. सोमसेन 12. धरणीधर 13. अतुलसेन 14.अशोकसेन 15. सुदर्शनसेन 16. सिद्धार्थसेन 17. गणेश्वर 18. लोकपति एवं एक पुत्री "ईश्वरी" नाम की शुभलक्षणा कन्या को जन्म दिया।** सभी पुत्र एवं पुत्री शास्त्रार्थ कुशल, गुणवान, महायश के कारणो से सम्पन्न, सुशील, आचार-व्यवहार में कुशल, पुण्यकर्म करने वाले, भाग्यशाली तथा महाबलशाली थे। सभी बालकों ने महर्षि गर्ग से वेदाध्ययन करने के साथ साथ महाराजा अग्रसेन से सभी-अस्त्र शस्त्र तथा लोकशास्त्र का ज्ञान अर्जित किया।

जेमिनी जी कहते हैं- हे जनमेजय! **महाराजा अग्रसेन की कन्या "ईश्वरी" का विवाह परम धार्मिक काशिराज के पुत्र राजा "महेश" के साथ किया गया जो मोक्षधर्म में स्थापित होकर ब्रह्म स्वरुप महामुनि के रुप में विख्यात हुए।** इसी प्रकार **नागराज "वासुकी"** के नाम से विख्यात महा **शक्तिशाली नागराज ने अपनी कन्याओं का विवाह विधि पूर्वक**

श्री अग्रसेन जी के पुत्रों से किया :-

1. श्री विभुसेन से चित्रा का
2. श्री विक्रमसेन से शुभा का
3. श्री अजयसेन से शीला का
4. श्री विजयसेन से कांतिका
5. श्री अनलसेन से स्वाति का
6. श्री नीरजसेन से रेणुका का
7. श्री अमरसेन से क्षमा का
8. श्री नगेन्द्रसेन से शिरा का
9. श्री सुरेशसेन से सखी का
10. श्री श्रीमंतसेन से श्रीमाला
11. श्री सोमसेन से शांति का
12. श्री धरणीधर से प्रिया का
13. श्री अतुलसेन से सुकन्या का
14. श्री अशोकसेन से सावित्री का
15. श्री सुदर्शनसेन से हेमवती का
16. श्री सिद्धार्थसेन से तारा का
17. श्री गणेश्वर से नागमणि का
18. श्री लोकपति से प्रभावती का

इस प्रकार विधिपूर्वक सभी राजकुमारों का नागकन्याओं से विधि पूर्वक पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ।

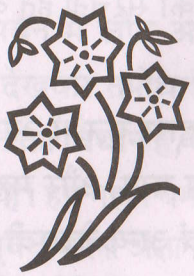

इक्कीसवां अध्याय (आहूति)

महाराजा जनमेजय ने कहा – हे महर्षे ! **मेरे मन में यह संदेह उत्पन्न हो रहा है कि क्षत्रिय वंश के महाराजा ने वैश्य वर्ण को क्यों अपनाया।** इस पर महर्षि जैमिनीजी ने कहा कि हे महाराज जनमेजय ! मैं तुम्हें मानव मात्र को सुख प्रदान करने वाले श्री अग्रसेन का परम धन्य वह कर्म बता रहा हूं, जिसकी देवता और ऋषि मुनिगण भी प्रशंसा करते है।

हे धर्मज्ञ जनमेजय! जब महाराजा श्री अग्रसेन जी का वंश पुत्र पौत्रादिकों के रुप में शताधिक (सौ से ज्यादा) **विकसित हो गया तब महर्षि गर्ग ने कहा कि हे अग्रसेन ! जिस प्रकार पूर्व काल में महामना इक्ष्वांकु, महाराज रधु आदि ने अपने वंश बनाये हैं, वैसे ही आप भी, अपनी संतति को गोत्र कृत करने हेतु अपने सद्गुणों से युक्त, वंश का विकास करने हेतु वंशकर नामक यज्ञ कीजिये। यह वंशकर यज्ञ आपके लिये कल्याणकारी होगा** तथा आपके वंशकर होने से आपकी अभिलाषाएं सफल होगी।

जैमिनी जी कहते है– चैत्र मास की पूर्णिमा तिथी को अग्रसेनजी ने यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कर शास्त्र विधि के अनुसार उसका पूजन प्रारम्भ किया। महर्षि गर्ग के निर्देशानुसार प्रमुख शिल्पियों, श्रेष्ठ मंत्रियों, वीर शौर्यसेन तथा ज्येष्ठ पुत्र विभुसेन को यज्ञ की संरचना हेतु व्यवस्थाओं का दायित्व दिया गया।

महाराजा अग्रसेन द्वारा यज्ञ में आचार्य पद पर कुल पुरोहित महर्षि गर्ग का वरण किया गया, और महर्षि वेदव्यास ब्रह्मा पद पर अभिषिक्त किए गए। एवं अन्य तेजस्वी ऋषिगणों महर्षि कश्यप, महर्षि वशिष्ठ, महर्षि गौतम, महर्षि अत्रि, महर्षि जैमिनी, महर्षि भारद्वाज, महर्षि साकल, महर्षि भारवी, महर्षि शांडिल्य, महर्षि श्रृंगी,

महर्षि ताण्ड्य, महर्षि मुद्गल, महर्षि कौशिक, महर्षि कौण्डिन्य, महर्षि आश्वलायक, महर्षि माण्डव्य व महर्षि गालव को यज्ञ में ऋत्विज बनाए गये। इनके अतिरिक्त बहुत से अन्य ऋषियों की पूजन व अर्चना की। उसके बाद अपनी धर्मपत्नी महारानी माधवी के साथ यज्ञ की अग्नि लाने के लिये आनन्द पूर्वक प्रस्थान किया। उस समय अग्रसेन का अंगवस्त्र (दुपट्टा) उनकी पत्नी के आंचल से बंधा हुआ था। महर्षि गर्ग ने उत्तम मुहुर्त में, यज्ञ अग्नि को अभिमंत्रित किया, उसकी पूजा की और फिर वह अग्नि कलश राजरानी माधवी जी के हाथों में सौंप दिया। उस अग्नि कलश को राजरानी माधवी जी ने हर्ष पूर्वक अपने मस्तक पर धारण कर यज्ञ वेदी की और प्रस्थान किया।

जैमिनी जी कहते है कि **वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में स्थित गुरुवार, अश्लेषा नक्षत्र में महर्षि गर्ग ने विधि पूर्वक मंत्रोचार के साथ उस अग्नि को यज्ञाहूति प्रदान की, और उस महायज्ञ को प्रारम्भ किया। इस प्रकार सत्रह दिनों में क्रमशः सत्रह यज्ञ पूर्ण हुए।**

जैमिनी जी ने कहते है – हे कुरुकुल श्रेष्ठ, जनमेजय ! **यज्ञ में नित (प्रतिदिन) होने वाले, रुधिर स्नात मांस युक्त बलिकर्म को देख कर श्री अग्रसेन जी के हृदय में, ग्लानि होने से, वे निश्तेज से हो गए, और विचलित मन से अपने भवन में लौट आए। बलि के लिये प्रयुक्त पशुओं की दयनीय दशा देखकर तपोधनी श्री अग्रसेन विचार करने लगे कि यज्ञ में जो पशुबलि का विधान है, वह न तो शुभकारक है, और न ही मंगलकारी हो सकता है।** हम महान धर्म की इच्छा करते हैं तो फिर इस प्रकार यज्ञ के माध्यम से पशुवध करना अज्ञान ही है। पशुबलि दिये जाने के कारण यह यज्ञ धर्म के अनुकूल नहीं है, ना ही हिंसा कर्म को धर्म कहा जा सकता है। **अग्रसेनजी की यज्ञ करने की इच्छा समाप्त हो चुकी थी,** मन

में ग्लानि भाव उत्पन्न होने से उनका शरीर पीला पडने लगा था, मुख की कांति फीकी पड निश्तेज सी दिखाई दे रही थी। इस प्रकार ग्लानिभाव उत्पन्न हो जाने से महात्मा अग्रसेन ने यज्ञ कर्म न करने का दृढ निश्चय कर लिया था। तब ऋषिगणों ने श्री अग्रसेन से जाकर पूछा कि हे राजन! इस तरह अचानक यज्ञ कर्म से विमुख क्यों हो गए ? तुम्हारा इस तरह अपूर्ण यज्ञ कर्म सर्वथा सोचनीय है। इस **अपूर्ण यज्ञ से देवताओं का प्रकोप राज्य पर होगा, सब और विनाश ही विनाश हो जावेगा। यह पशुबली शास्त्रों के यज्ञीय विधान में स्वीकृत है, इसे हिंसा न मान कर निर्विघ्न रुप से यज्ञ** को पूर्ण करों।

श्री अग्रसेन ने कहा- हे परमपूज्य महर्षे ! मै आप सबको प्रणाम करता हूँ। मै तो सदैव आप लोगों का ही अनुकरण करता हूँ। मेरे मन ने जिस प्रकार के चिन्तन का अनुभव किया है वो मैं आपको कहता हूँ।

हे महामते ! संसार में किसी भी प्राणी को मृत्यु प्रिय नहीं है, किसी को भी आपने प्राणों से बढ़कर अन्य कोई वस्तु प्रिय नहीं है, इसी तरह प्राणदान से बढ़कर कोई दूसरा दान नही है। स्वयं बृह्माजी ने पशुओं को भी श्रृष्टि पर जन्म दिया है अत: **पशुबली वध नही अपितु हिंसा ही है।** हे ऋषिवरों ! अपने सुख की कामना करने वाला स्वार्थी पुरुष किसी का वध करके इस लोक या परलोक में भला कैसे सुख प्राप्त कर सकेगा। **हे मुनिवरों! वनों को काटने वाले, पशुओं की हत्या करने वाले, तथा रक्तिम कर्म करने वाले ही, यदि स्वर्ग जाएंगे, तो फिर नर्क में कौन जाएगा।** हे मुनिवरों ! आप लोगों द्वारा ही समय समय पर इस जगत में तीन दोष बतलाये गए हैं। **मिथ्याभाषण** (असत्य बोला) **बहुत बड़ा दोष है, परस्त्री गमन उससे बड़ा दोष है, और बिना बैर के दूसरों के प्रति क्रूरता पूर्ण व्यवहार जगत में सबसे बड़ा दोष बताया गया है।** हे महर्षे ! बलि

देना मेरी दृष्टि में कदापि योग्य नहीं है, संकट में पडे प्राणियों की रक्षा करना ही मनुष्य का प्रयोजन होता है। हे महामना ऋषिवरों ! परोपकार के लिये तो मैं अपना यह शरीर भी देने के लिये सहर्ष तत्पर रहता हूँ, किन्तु स्वयं के सुखके लिये प्राणी वध की अनुमति भला मैं कैसे दूँ ? **हे महामना ऋषिवरों ! यदि क्षत्रियों के लिये ऐसा क्षुद्र, क्रूर, नृशंस, लोभमयी, पापाचार युक्त, हिंसापूर्ण व्यवहार कुछ भी दोषपूर्ण नहीं है तो अपनी प्रजा की रक्षा एवं उसका विनाश रोकने हेतु मैं वल्लभसुत अग्रसने क्षत्रिय धर्म का परित्याग करता हूँ। मै सत्य की शपथ लेकर घोषित करता हूँ कि अब मैं वैश्य धर्म का अनुपालन करुंगा।** क्योंकि प्रजा का पालन ही वैश्यों का दया प्रधान धर्म है, और यही उत्तम राज्य का भी धर्म है। वैश्यों का कर्म कृषि, गोपालन एवं व्यापार कहा गया है, इस प्रकार कृषि से अन्न, गोपालन से दुग्ध तथा व्यापार से समस्त लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति संभव है। अत: **मेरा कुल आज से "वैश्य" हो जाए** और उनका मन सदा ही धर्म में लगा रहे। **शास्त्रों में वैश्यों द्वारा यज्ञ कर्म के उपरान्त यज्ञ के देवताओं की प्रसन्नता के लिये जिस रुप में बलि प्रदान करने का वर्णन किया गया है वह दूध, दही की बनी हुई परम पवित्र पुष्पों से सुशोभित होती है। यही शास्त्रीय विधान है। अब मैं और मेरा कुल वैश्य धर्म को अपना चुके हैं तो अब मैं शास्त्रीय विधान की अवहेलना कैसे कर सकता हूँ।**

अग्रसेन के वचनों एवं निर्णय को जान कर ऋषियों ने कहा - राजन अग्रसेन! हम तुम्हारे निर्णयात्मक वचनों से परमसंतुष्ट है, तुम्हारे वचन लोकोपकारी भावनाओं के अनुरुप ही है तथा तुम्हारे कुल की कीर्ति बढ़ाने वाले हैं।

जैमिनी जी कहते है- हे जनमेजय ! इस प्रकार अग्रसेन जी ने **"वैश्य" धर्म अपना कर, वैश्य धर्म के शास्त्रीय विधान के अनुरुप दूध,**

दही एवं सुगन्धित पुष्पों से यज्ञ के देवताओं को प्रसन्न रखने के लिये उनके समक्ष वैश्य वर्ण के अनुरुप बली पूर्ण कर, यज्ञ को पूर्ण किया। इस प्रकार महाराजा श्री अग्रसेन जी ने सत्रह यज्ञ क्षत्रिय वर्ण की व्यवस्थाओं के अनुकूल एवं अठारहवां यज्ञ वैश्य वर्ण की व्यवस्थाओं के अनुकूल पूर्ण किया। (वस्तुतः हमारे समाज में इस प्रकार की भ्रांति, तथ्यों के उपलब्ध न होने के कारण ही अनजाने में प्रचलित रही कि अठारहवां यज्ञ अधूरा रहने के कारण अग्र कुल में साढ़े सत्रह गौत्र रह गये। किन्तु अग्रउपाख्यानम् ग्रंथ के मिलने पर दर्पन की भांति स्पष्ट हो गया कि सभी अठ्ठारह यज्ञ पूर्ण हुए है एवं उन पर आधारित सभी अठ्ठारह गोत्र पूर्ण है।)

बाईसवां अध्याय (दिशा)

जैमिनी जी कहते हैं- हे जनमेजय ! महाराजा अग्रसेन अपने राज्य की प्रजा की रक्षा, सत्य का पालन, मानवता के शत्रुओं का संहार कर निश्चिंत होकर सभी कार्य सुचारु रुप से सम्पन्न कर रहे थे। सम्पूर्ण प्रजा अग्रसेन के राज्य में खुशहाल थी। इस प्रकार अग्रसेन जी की बढती हुई कीर्ति से पापपूर्ण मन वाले राजाओं के हृदय को चोट पहुंच रही थी। ऐसे सभी राजाओं ने संयुक्त रुप से मंत्रणा की, कि अग्रसेन वृद्ध हो गया है, अब इसमें बाल बुद्धि आ गई है, क्षत्रियों के महत्व को नही समझता, इसमे नपुंसकता आ गई है, अपने क्षत्रिय धर्म को त्याग कर, वैश्य धर्म को अपनाया है। रोहता के नरेश ने सभी राजाओं को एकत्रित कर उनसे कहा कि अब हमें संयुक्त रुप से इस अवसर पर इस कमजोर किन्तु विपुल धन सम्पदा के मालिक अग्रसेन का वध करने की योजना बनानी चाहिये ऐसी पाप पूर्ण भावना से प्रेरित राजाओं की सभा में **मालव प्रदेश के राजा यतेन्द्र ने इस प्रकार कहा - यह युक्ति संगत समय है, हमे संगठित रुप से अपनी सेना के साथ, आग्रेय पुरी को चारों और से घेर कर शीघ्र ही पूरी तरह से नष्ट कर उस पर अपना अधिकार कर अग्रसेन की अतुलित संचित धन सम्पदा पर अपना अधिकार कर लेना चाहिये।** इस प्रकार लोभ और मोह के वशीभूत नाना प्राकर के अस्त्र शस्त्रों को धारण कर सभी राजाओं ने अपनी सेना के साथ अग्रसेनजी की आग्रेय पुरी को घेर लिया। आग्रेय पुरी को चारों ओर से शत्रु राजाओं द्वारा घेर लेने की सूचना जब अग्रसेन जी के राज महल में पहुची तो अनुज शौर्यसेन ने कहा- हे महाराजा अग्रसेन! मै यहां अपने वीर पुत्रो सहित उपस्थित हूँ, साथ में महाबुद्धि मान युवराज विंभुसेन, महातेजस्वी सेनापति पद्मकेतु, युद्ध कुशल महारथी सुषेन तथा अन्य सभी वीर उपस्थित है, जो युद्ध के लिये आतुर सेना के प्रतिकार हेतु आपके आदेशों की प्रतिक्षा में हैं तथा मैं आगे बढ़ कर इस सेना का नेतृत्व करने को तैयार हूँ।

चाचा शोर्यसेन के इस प्रकर के वचनों को सुनकर, पिता महाराजा अग्रसेन जी तथा चाचा शोर्यसेन को प्रणाम करते हुए कहा – हे भवान! **आप लोग तो संग्राम भूमि में प्रलय का दृश्य उत्पन्न कर देने वाले परम वीर हैं, और फिर आपके योग्य वहां सेना ही कितनी है?** हे महाराज ! जिनका बल रुई के समान हो, जो सम्मुख आने पर मुंह की फूंक से उड़ जाने वाले हों , उन्हे जलाने के लिये धधकते हुए बडवानल की क्या आवश्यकता है? जो धूल, थोडी सी बूंदा बांदी से ही शांत हो जाने वाली हो उसके लिये वरुण को क्रोध पूर्वक जाने की क्या आवश्यकता है? आपकी आज्ञा पाकर, मै उन राजाओं को बंदी बनाकर आपके समक्ष ला सकता हूँ।

जैमिनी जी कहते है– हे धर्मज्ञ जनमेजय ! उस महान तेजस्वी वीर ने भंयकर गर्जना के साथ, रथ से आगे बढ कर, अपना शंख बजाते हुए, शत्रु राजाओ द्वारा रचित पद्मव्यूह को महत्व हीन समझते हुए रणकुशल विभुसेन सबसे आगे बढ़े। **विभुसेन को अपनी और आते हुए देख कर राजा दिग्गजसेन ने कहा – अरे ओ कुलविनाशक! तू अब इस रमणीय राज्य को छोड दे, क्यों कि क्षत्रिय धर्म से रहित होने के कारण, अब तेरा जीवन वीरतापूर्ण नही रहा है। तब विभुसेन ने कहा– मूर्खो ! मेरा वैश्य तत्व, कोई नपुंसकता नही अपितु पुरुषार्थ पूर्ण कर्म है। तुम लोग इस तरह भयभीत क्यों हो रहे हो? मै अपनी क्षमा और पराक्रम दोनो ही तुम्हे दिखाऊंगा।** जिस प्रकार घास फूस से घिरी हुई आग निश्चय ही उसे जलाकर भस्म कर देती है, उसी तरह महावीर विभुसेन क्रोध से परिपूर्ण होकर उस आततायी सेना को भस्म करने लगे। राजा दिग्गजसेन की सम्पूर्ण सेना को, युद्ध भूमि में नष्ट भ्रष्ट करके, कष्ट में डाल दिया और फिर अपनी सेना की तरह ही उनकी सेना को भी अपने अधिकार में ले लिया। विभुसेन द्वारा की गई तीरों की वर्षा से दिग्गजसेन व अन्य प्रमुख वीर मुर्छित होकर गिर पड़े तब बाणों से विमोहित हुए उन नृपतियों को बन्दी बनाकर, वीर

विभुसेन हर्ष पूर्वक अपने नगर में ले आये। विभूसेन ने उसी अवस्था में आततायी दिग्गजसेन को उनके साथियों सहित महाराज अग्रसेन के समक्ष उपस्थित किया। युवराज विभुसेन ने चाचा शोर्यसेन को सम्बोधित करते हुए कहा– भवान ! **कृपया महाराज को सूचित कर दीजिये कि ये पापात्मा आततायी अब महाराजा श्री अग्रसेन के दास हो चुके है।** इस प्रकार अग्रसेन के वंशज एवं महाप्राज्ञा माधवी देवी जैसी माता के पुत्र ने **युद्ध भूमि में आतताइयों का संहार करने की बजाय, उनको मुर्छित कर, अपने संरक्षण मे लिया** जो उनका योग्य कर्म ही था।

जैमिनी जी कहते है– हे धर्मज्ञ जनमेजय ! युवराज विभुसेन के इस प्रकार कहने पर उन **पराजित राजाओं से महाराजा श्री अग्रसेन ने प्रेम पूर्वक कहा– राजन ! जाओं ! अब तुम्हें दासत्व से मुक्त किया जाता है! फिर कभी ऐसा घृणित कार्य नही करना। तुम्हारे इस प्रकार के क्षत्रित्व को धिक्कार है। क्षत्रियों का धर्म आततायियों से रक्षा करना है , आततायी होना क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है। आप अपने रथ, घोड़े तथा सेना सब कुशलता पूर्वक साथ ले जाएं। तब दिग्गजसेन ने कहा– हे राजन ! आप राजा नही महाराजा हैं।** अब तक हम सब नृपति (राजागण) अज्ञानता वश, आपके वास्तविक स्वरुप को नहीं पहचान पाये थे, इसलिये आपके प्रति यह अपराध कर बैठे। आप हमे क्षमा प्रदान करें। **अग्रसेनजी के ऐसे व्यवहार के कारण ही उनसे कोई द्वेष रखने वाला था ही नही , इसी लिये वे "अजातशत्रु" कहलाते थे।**

तेईसवां अध्याय (समत्व)

जैमिनी जी कहते है- हे धर्मज्ञ जनमेजय ! **अब तक तुमने श्री अग्रसेन जी के श्रेष्ठ कर्मो की संक्षिप्त गाथा सुनी। अब एक आश्चर्यजनक घटना घटी उसे सुनो। एक दिन महाराजा अग्रसेन ने कारागार में अपने बचपन के मित्र शाकुन्त नाम के ब्राह्मण** को देख कर पूछा - मित्र ! तुमने ऐसा कोनसा भयंकर पापकर्म किया है ? जिसके कारण तुम इस अवस्था को प्राप्त हुए। हे द्विज ! तुमने वह सब क्यों किया ? तुम्हे इस अवस्था में देख कर मेरे मन को कदापि शांति नहीं मिल रही। **महाराज अग्रसेनजी के इस प्रकार पूछने पर बंधन से पीडित शाकुन्त ने बड़ी कठिनाई से अपने को सम्हालकर कहा - मुझे, दैवयोग से, भूख से पीड़ित रहकर, विवशतापूर्ण अकर्म करना पडा, मेरे बच्चे क्षुधा से क्षीण होकर शव के समान हो गये थे, बन्धुजन कम मतलब रखने वाले रह गए थें, पत्नी फटे वस्त्रों में रहती थी, वह सब भी मेरे लिए कष्टदायी नहीं था। किन्तु दरिद्रता की जो परमूर्ति स्वरुप है- वह है - याचना ! जो मनुष्य के शील को, कठोर कुल्हाड़ी के प्रहार से काट डालती है ! दरिद्रता होने पर मनुष्य को लज्जा घेरती है ! लज्जित होने पर व्यक्ति का पुरुषार्थ नष्ट हो जाता है ! पुरुषार्थ के अभाव में वह सर्वत्र अपमानित होता है ! अपमानित होने पर हृदय में ग्लानि होती है ! ग्लानि होने से शोक होता है ! शोक होने पर बुद्धि ही भ्रष्ट हो जाती है! बुद्धि भ्रष्ट होजाने पर तो मनुष्य स्वयं ही नष्ट हो जाता है ! इस प्रकार, हे राजन! दरिद्रता में ही सभी विपत्तियों का निवास है।** हे राजन ! मै तो पराधीन था ! क्षुधा (भूख) ने ही मुझे विवश कर अकर्म के लिये प्रेरित किया था, अत: इसमें **जो कुछ भी दोष है, वह मेरा नहीं , वह भूख का है, जिसके मैं अधीन था।** उस ब्राह्मण शाकुन्त के इस प्रकार कहने पर नरश्रेष्ठ अग्रसेन ने उसे गले से लगा लिया, और विचार करने लगे कि इस प्रकार

निरपराध को बंधन में रखकर कष्ट देना उचित नही है। निश्चय ही जीवन निर्वाह का कोई उपाय न होने के कारण क्लेश पूर्ण जीवन जीते जीते, जीवन यापन के लिये उत्तम बुद्धि द्वारा सम्मान के योग्य होने पर भी दुराचारियों द्वारा तिरस्कृत होकर ही इसने दुष्कर्म किया है। अग्रसेन जी ने मन में चिंतन किया कि यह श्रेष्ठ ब्राह्मण जो मेरा मित्र भी है, इसके अपराध को क्षमा कर इसे छोड दिया जाना चाहिये ? मैं राजा हूँ। प्रजा में दरिद्रता होने के कारण मैं भी तो इस अपराध का सहभागी हूँ। अग्रसेन को इस प्रकार चिंता से घिराहुआ देख कर महर्षि गर्ग ने कहा- वत्स ! अपनी श्रेष्ठ बुद्धि को सदैव संयमित रखो। हे नृपश्रेष्ठ ! न्याय पूर्वक लोकयात्रा कैसे हो ? धर्म की रक्षा कैसे हो ? आत्मा का कल्याण किस तरह हो ? इस प्रकार भांति भांति के पुण्य कर्मो तथा पाप कर्मो की जो समीक्षा करते हैं, वे ही राजा धन्य है। हे अग्रसेन ! सनातन न्याय सिद्धांत क्या है ? इसे तुम अच्छी तरह से जानते हो।

जैमिनी जी कहते है- महाराजा अग्रसेन ने राज्य सभा में बैठे हुए सभी को सम्बोधित करते हुऐ विनम्र भाव से कहा कि मनुष्य को अपने कृत्य का फल भोगना ही पडता है। न्याय नीति के अनुसार शाकुन्त अपराधी है। परन्तु **समस्त प्राणियों को अभय दान देना, याचक को उसकी अभीष्ट वस्तु देना और देकर भूल जाना ही श्रेष्ठ दान है।** अर्थात् **दान देकर उसका गुणगान करने से दान का महत्व क्षीण हो जाता है,** अत: यश के मोह की गंध से रहित दान ही श्रेष्ठ दान है। **याचक मर जाता है, दाता सर्वदा जीवित रहता है।** याचक को दिया गया दान ही मनुष्य का दया रुपी परम धर्म है। जो व्यक्ति विद्वान तथा योग्य होने के बावजूद, भाग्यवश अपनी आजीविका के क्षीण हो जाने के कारण दीन हो जाते है, तथा स्त्री एवं पुत्रादिकों के पालन कर सकने में असमर्थ हो जाने के कारण अनेकों कष्ठ उठाते है तथा किसी से याचना नही करते, ऐसे स्वाभिमानी पुरुषों को प्रत्येक उपाय से सहयोग देने के लिए प्रयत्न करना चाहिये। उनकी उपयुक्त

आवश्यकताओं की जानकारी लेकर उनके सुख की स्थापना हेतु हमें सदैव समुचित कर्म करना चाहिये।

विभुसेन ने पूछा- हे प्रभों ! जो व्यक्ति कष्ट उठाने पर भी किसी से याचना नहीं करते, उनका किस प्रकार से उपकार किया जा सकता है ?मैं इस बात को विस्तार से जानना चाहता हूँ।

श्री अग्रसेनजी ने कहा- हे आत्मज ! यदि राष्ट्र में इस प्रकार के लोग हों, तो वे, निश्चित ही पुजनीय हैं। ऐसे लोगों को तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कौन जीविका दे सकता है। अर्थात उन्हे दान देने की अपेक्षा उनकी आजीविका का प्रबन्ध अवश्य करना चाहिये। **जिस तरह स्त्री का धर्म पति की सेवा करना है उसी प्रकार राजा का धर्म अपनी प्रजा की सेवा एवं पालन है।** वत्स ! यदि किसी राष्ट्र में कोई व्यक्ति भूख से कष्ट पा रहा हो तो उस राष्ट्र की उन्नति रुक जाती है, और वह राष्ट्र शत्रु राजाओं के हाथों में चला जाता है। ऐसे पुरुषो का पता लगाकर गुप्त या प्रकट रुप में उनकी आजीविका का प्रबंध करना ही राजधर्म है।

जैमिनी जी कहते है - हे धर्मज्ञ जनमेजय ! **श्री अग्रसेन ने कहा - हे वत्स ! इसिलिये , आज से इस राष्ट्र आग्रेय में, जो भी व्यक्ति भाग्यवश आजीविका से हीन हो, उन्हें बिना याचना किए ही राज्य के सभी निवासी एक "निष्क" और एक ईंट स्वयं उनके पास जाकर उन्हें भेंट स्वरुप प्रदान करें।** (द्वापर युग के अन्तिम चरण में विनिमय की दृष्टि से जो धातुअंश प्रचलन में था उसे निष्क कहा गया है)

इस प्रकार सर्वोत्थान की भावना से **"उपकारहीन उपक्रम"** स्थापित कर बन्धुत्व की भावना का विकास कर व्यक्ति के, समाज के, राष्ट्र के तथा मानवता के कल्याण का सूत्र बनाया है उसे "समाजवाद" जैसे सीमित शब्द से आंकलन करना इस सर्वलोक कल्याणकारी स्वरुप की गरिमा को क्षीण

करना ही है।

जैमिनी जी कहते है - हे कुरुकुल भूषण जनमेजय ! श्री अग्रसेनजी के इस प्रकार समता के सिद्धान्त को लागू किये जाने के सामुदायिक दायित्व के इस निमय से उनके **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** की भावना युक्त चिन्तन एवं निर्देशों को सुनकर, प्रजा सहित उनके सभी पुत्रों तथा राजगुरु गर्ग को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

चौबीसवां अध्याय (चेतना)

जैमिनी जी कहते है - हे धर्मज्ञ जनमेजय ! **महाराजा अगसेन श्रद्धावान थे। क्रोध को जीत चुके थे, दानी थे, सबका समुचित मान करते थे, दुर्बल, पीड़ित व्यक्तियों को सदा धीरज बंधाया करते थे,** सदैव धर्म का आचरण करते थें, बदले में मान-सम्मान आदि कुछ भी नहीं चाहते थे। उस समय द्वापर युग का अन्त एवं कलियुग का प्रवेश काल था, इसीलिये मनुष्यों के गुणों में विपरीतता आने लगी थी। कहीं चोरों से, कहीं अस्त्र शस्त्रों से, कहीं राजाओं के आपसी द्वन्दो से बहुत से राज्य और नगर उजड़ने लगे। **ब्राह्मण अपने पथ से भ्रष्ट होने लगे थे, मंदिर एवं मठ श्रृद्धा रहित होने लगे थे, पुत्रों ने पिताओं पर तथा स्त्रियों ने पतियों पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया था। हे राजन ! धर्म के विपरीत, निन्दित कर्मो द्वारा मनुष्यों में विपुल धन अर्जित कर अधर्म पूर्वक और अधिक धनोपार्जन करने की अभिलाषा बढ़ने लगी।** द्वापर व कलि के संधिकाल में जब धर्म का मार्ग अवरुद्ध होने लगा, चारों और विनाशकारी भय ही भय दिखाई देने लगा तब ऋषिगण, मुनिगण, महात्मा पुरुष स्वाभाविक रुप से चिन्तित हो, विचार किया एवं महर्षि गर्ग ने महाराजा अग्रसेन से कहा - हे राजर्षि ! अग्रसेन ! यह युग का संक्रमणकाल है ! अतः अशांति से ग्रसित

पृथ्वी पर धर्म और शांति की स्थापना हेतु योग्य प्रयत्न करो । तुम धर्म का अनुसरण करने वाले हो, अतः नष्ट होते हुए धर्म की रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है ।

तब महात्मा **अग्रसेन ने जन जन को सुख शांति प्रदान करने एवं चेतना पूर्ण संदेश फैलाने हेतु आग्रेय गणराज्य से प्रस्थान किया। कलि के प्रभाव से नष्ट होते हुए, धर्म और प्रजा की रक्षा हेतु अग्रसेन जीवन धर्म का उपदेश देने हेतु भ्रमण करते रहे।** जगह जगह पर लोग उनके मधुर वचनों को सुनने के लिये प्रसन्नतापूर्वक लालायित रहते थे। **महत्मा अग्रसेन लोगों की मनोभावनाओं को धर्म की ओर खींचते हुए पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर रहे थे। अग्रसेन धर्म के प्रसार के क्षेत्र में ऋषि मुनियों तथा महात्माओं की तरह ही गतिशील थे। रात दिन "धर्म की संचेतना का प्रसार" ही उनका कर्म रह गया था।** इस प्रकार लोगों में पुनः मर्यादा एवं धर्म के प्रति आस्था जागृत कर पुनः अपने राज्य आग्रेय में पधारे। आग्रेय राज्य में महर्षि गर्ग ने इस अशांत युग में शांति की स्थापना हेतु अग्रसेनजी के प्रयत्नों को देख कर अति प्रसन्नता के साथ आंसू छलकाते हुए अग्रसेन जी की प्रशंसा करते हुए बोले – हे वत्स अग्रसेन ! तुमने जिस धर्म को प्रतिष्ठित किया है, वह प्रत्यक्ष, सुखमय, आत्मा के साक्षित्व से युक्त एवं सर्वलोक हितकारी है। सारे जगत का कल्याण करना ही मानव का परम धर्म है।

पच्चीसवां अध्याय (संकल्प)

जैमिनी जी कहते है– हे जनमेजय ! महाराजा अग्रसेन जी ने **यज्ञों द्वारा देवताओं** को, श्रृद्धायुक्त **सत्कर्मों से पितरों** को, यथा योग्य **अनुग्रह करके दीन दुखियों** को तथा वान्छित वस्तुओं एवं **सेवाओं से सम्पूर्ण प्रजा** को प्रसन्न किया। इन्द्र के समान ही महाराजा अग्रसेन जी ने अपनी प्रजा का पालन किया। **एक सौ आठ वर्ष की आयु पूर्ण कर लेने** पर एक दिन सभी स्वजनो को आपने पास बुला कर कहा कि मैने लोकहित की साधना करते हुए जिस प्रकार राज्य धर्म को निभाया है, उसी प्रकार अब हमे आत्मा के हितार्थ तप साधना हेतु वानप्रस्थ जीवन का कर्तव्य निर्वहन करना है। राजरानी माधवी देवी सहित हमे वन में विचरण करते हुऐ पुण्य तपष्या करने का समय आ गया है। अतः **राज्य के हित में अब आप किसे युवराज बनाना चाहते हैं?** राज्य के लिये जो हितकर हो, उस पर आप सब विचार करें।

महर्षि गर्ग ने कहा – **हे राजन अग्रसेन ! आप धर्मज्ञ, सत्यप्रिय, शीलवान, अहिंसक, प्रिय वाचक तथा जितेन्द्रिय है। आपकी यह लोकतांत्रिक अभिलाषा सभी के लिये कल्याणकारी है।** सौभाग्य से आपके पुत्र विभुसेन भी आपके ही समान प्रजा का कल्याण करने में समर्थ हो चुके है। इस प्रकार सभी सभासदो एवं राज्य के लोगो ने विभुसेन को राजा घौषित करने का निर्णय किया।

महाराज अग्रसेन ने विभुसेन का राज्याभिषेक कर, कहा कि हे वत्स! अब यह आग्रेय देश तुम्हारे अधिकार में रहेगा, तुम्हारे अन्य भ्राता गण सीमान्त देशों के अधिपति रहेंगे। इस प्रकार महाराजा अग्रसेन जी ने जीवन की सफलता के सूत्र बताते हुए कहा कि – बुद्धिमान पुरुष न किसी पर क्रोध करे, ना किसी का अनादर करें, सभी प्राणियों के प्रति दया और मैत्रीपूर्ण व्यवहार, दान तथा सबसे मधुर वाणी का प्रयोग करें, तो इनके समान कोई वशीकरण

मंत्र नही है। इसलिये सदैव मधुर वचन बोलना चाहिये, पूजनीय पुरुषों का यथोचित आदर सत्कार, पूजन करना चाहिये, दूसरों को यथा शक्ति देना चाहिये, कभी किसी से मांगना नहीं चाहिये। जब भी श्रेष्ठ कर्म करो, तब गुरु को सदैव आगे करके करना चाहिये।

विभुसेन ने पूछा – हे महात्मन ! पिताश्री ! कृपया यह भी बतलाइये कि कैसा कर्म करने से इस लोक में कीर्ति तथा उत्तम सुख की प्राप्ति संभव हैं?

महाराज अग्रसेन ने कहा – विभो ! ऐसा नहीं है कि बुद्धि से ही धन व ऐश्वर्य प्राप्त होता है, और न ही दरिद्रता का कारण मूर्खता होती है। यह सब तो भाग्य के अधीन है। परन्तु **सत्य, धैर्य, मनोनिग्रह, पवित्रता, दया, मधुरवाणी और मित्र से द्रोह न करना – ये सात बातें लक्ष्मी को बढ़ाने वाली है।** संसार चक्र में इस वृतान्त को केवल विद्वान पुरुष ही जानते है, अन्य नहीं। हे वत्स ! **कोई व्यक्ति उत्तम कुल में जन्मा हो या अधम कुल में जो व्यक्ति मर्यादाओं का उल्लघंन नहीं करता, धर्म की अपेक्षा रखता है, मृदुल स्वभाव वाला तथा सलज्ज हो, वह अधम कुल का होने पर भी सैंकड़ो कुलीनों से बढ़कर है** तथा जो व्यक्ति अत्यन्त श्रेष्ठ, अतिशय दानी, अती शूरवीर, बड़ा तपस्वी, श्रेष्ठ बुद्धिमान ही क्यों न हो, यदि वह अपनी श्रेष्ठता के अहंकार में चूर हो, तो अपमानित हो जाने के भय से उसके घर पर लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती। जिनके आचरण में क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समता, सत्य और सरलता हो उन्हें ही इस लोक में सनातन स्थान की प्राप्ति होती है। मैंने स्वयं राज्य से हीन होने पर, अनेकों संकटो तथा अत्यन्त गंभीर दुखों को झेला, किन्तु अपनी लज्जाशीलता तथा पुण्य कर्मों के कारण ही इस अमृत्व तथा पुरुषों की श्रेष्ठ गति को प्राप्त किया है। हे विभो ! उत्तम नीति द्वारा संरक्षित कर्म, एवं पदार्थ भी दैवों के प्रतिकूल होने पर नष्ट हो जाते है, अत: दैवों को

अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना ही विद्ववत्ता है। हे वत्स ! **मेरा मत है कि यदि शूद्र के स्वभाव एवं कर्म दोनो उत्तम हों, तो वह द्विजातियों से भी बढ़कर है।** श्रेष्ठता का आधार तो केवल मनुष्य का आचरण होता है। वत्स ! **जिस राज्य में मनुष्य क्षुधा से पीडित हों, रोती बिलखती स्त्रियों का बल पूर्वक अपहरण हो जाता हो, और उनके असहाय पति पुत्रादि रोते रह जाते हों, उस राजा के जीवन को धिक्कार हैं।** वत्स ! जो दुखी एवं पीड़ित मनुष्यों को हाथ का सहारा देता हे, उसकी पीड़ाओं का निवारण करता हे तथा जिसका दर्शन भी लोगों के लिये सुख प्रदान करने वाला हो, जो स्वयं सत्य परायण होकर सत्यपूर्ण व्यवहार करता है, वही वस्तुत: राजा होता है। हे वत्स ! विभो ! इस प्रकार तुम सारे मानवोचित गुणों को जान चुके हो। निश्चय ही तुम्हारे राज्य में सारी प्रजा समस्त सुखों से समृद्ध होगी ऐसा विश्वास है।

जैमिनी जी कहते है – हे धर्मज्ञ जनमेजय ! तदनंतर, राजा विभुसेन ने ऐसे नीतिपूर्ण मार्गदर्शक अपने पिताश्री महाप्राज्ञ अग्रसेन जी को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा की और कहा कि पिताश्री ! आपके कहे गए वचन, मेरे लिये परम कल्याणकारी एवं हितकर है। मैं इन सभी निर्देशो का पूर्ण रुप से पालन करुंगा।

जैमिनी जी कहते है – हे धर्मज्ञ जनमेजय! इस प्रकार, **महात्मा अग्रसेन महाप्राज्ञा माधवी देवी के साथ, मार्गशीर्ष पौर्णिमा को आग्रेय राज्य से बाहर निकले** एवं प्रजाजन उनका अभिवादन नगर के बाहर तक कर पुन: नगर की और लौट गये।

छब्बीसवां अध्याय (आनन्द)

जैमिनी जी कहते है- हे परमजिज्ञासु जनमेजय ! **श्री अग्रसेन अपनी धर्मपत्नी सहित, तपस्वी जीवन बिताते हुए अर्थ, काम तथा सभी सुखों को त्याग कर उंची नीची जमीन पर सोते बैठते यमुना नदी के तट पर त्रिभुवन अधीश्वरी महालक्ष्मी का स्तवन करने में लीन हो गये।** ब्रह्मा जी द्वारा रचे गए महा लक्ष्मी के सैंकडों मन्त्रों से श्रद्धापूर्वक **एक पैर पर खडे रहकर वर्षों दुर्धर योग का अनुष्ठान किया।** इस दौरान उनका **शरीर चमड़े से ढंकी हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया।** तब सहसा एक दिन सूर्य के निकट ही उन्हें आकाश में द्वितीय सूर्य के समान एक दिव्य ज्योति दिखाई दी, जो अग्निशिखा के समान प्रकाशित हो रही थीं। आकाश से वह ज्योति उन के समीप आती हुई दिखाई दी तो कमल दल पर विराजमान अनन्त रुप राशि से सम्पन्न शोभायमान महालक्ष्मी जो सूर्य के समान तेजस्विनी थी, को साक्षात अपने समक्ष देखा। **आगे बढ़कर अग्रसेन जी एवं माधवी जी ने स्वयं को महालक्ष्मी के श्रीचरणो में आत्म समर्पित कर दिया।**

तब महालक्ष्मी ने कहा - नित्य धर्माचरण करने वाले दानशील, विनम्र तथा सत्यवादी ! तुम दोनो ही महाप्राज्ञ हो। तुमने अपनी तपस्या से मुझे परम संतुष्ट किया है। **मैं अति प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे मन अभिलाषित वर मांगो।**

जैमिनी जी कहते है- तब दोनों ने महालक्ष्मी की अनुपम पूजा करने के उपरान्त कहा कि हे मातेश्वरी ! **आपके दिव्य और सनातन स्वरुप का जो हमें दर्शन मिला है यही हमारे लिये सबसे बड़ा पर्याप्त वर है।** तब देवी महालक्ष्मी ने कहा कि वत्स ! **मैं तुम दोनों की भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। हे पुत्र ! तुम्हे मुझसे वरदान अवश्य लेना चाहिये।**

जैमिनी जी कहते है- हे जनमेजय ! **इस प्रकार महा लक्ष्मी के पुनः निर्देश पर** माधवीजी सहित श्री अग्रसेन जी ने हाथ जोड़कर इस प्रकार वर मांगा - हे परमेश्वरी महालक्ष्मी ! तीनों लोकों में आपकी कृपा प्राप्त होने पर ही उत्तम तथा उत्साह पूर्ण कार्य सम्पन्न होते है, आप कल्पवृक्ष के समान तत्काल सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली है, अतः **मैं अपने वंश के सर्वदा अभ्युदय हेतु आपसे बारम्बार याचना करता हूँ।**

महालक्ष्मी ने प्रसन्न होकर वरदान दिया - हे अग्र ! मेरी कृपा से तुम्हारा वंश, स्वयं तुम्हारे तेज से परिपूर्ण होगा, जो कि तीनों लोकों के संकटो एवं दुखों से जगत को मुक्ति दिलायेगा, **तुम्हारा वंश जगत में विख्यात होगा** ओर उसी से सारे जगत में तेजमयी आलोक फैलेगा, तुम्हारे आचरण का अनुकरण करने वाले तथा उस पर प्रवृत होने वाले , जगत में श्रेयता प्राप्त कर सकेंगे और तब **जगत में लोग तुम्हें अपना आदर्श मानेंगे, तुम्हारी कथाओं का गान करेगे, मैं तुम्हे यह सत्य वचन कहती हूँ।** हे अग्र ! जिस कुल में **मेरी नित्य पूजा होती हो ऐसा तुम्हारा अग्रवंश होगा,** मैं तुम्हे वचन देती हूँ। कि - **जब तक सूर्य और चन्द्रमा विद्यमान है, तब तक, पूजित होने पर मैं तुम्हारे कुल का परित्याग नहीं करुंगी।** इस प्रकार महालक्ष्मी अग्रगणो की रक्षा का भार स्वयं लेकर वहीं अर्न्तध्यान हो गई।

जैमिनी जी कहते है- हे महाप्राज्ञ जनमेजय ! उसके बाद वहां **स्वर्गलोक से एक देवदूत विमान लेकर अग्रसेन के पास पहुंचा** और कहा कि इसमें बैठकर आप दोनों शुभ लोक (स्वर्ग लोक) में चले। उसके बाद अग्रसेन जी ने देवदूत को नमस्कार करके कहा हे तात ! **आप सुख पूर्वक वापिस चले जाएं, स्वर्ग अथवा वहां का सुख दोषों से युक्त है। पुण्यों के भोग होने से उसका क्षय होता है,** और पुण्यों के क्षय हो जाने पर वहां से पतन होता है। अतएव स्वर्ग का भोग स्थाई नहीं है। अतएव मुझे स्वर्ग

की कदापि कामना नही है। स्वर्ग में निवास कर चुके मनुष्यों को स्वर्ग से पतन के पश्चात उन सुखों की स्मृती होने पर महादुख का अहसास होता है। अत: **मैं केवल उसी "अक्षयधाम" का अनुसंधान करुंगा जो अविचल हो।** ऐसा कह कर महामानव श्री अग्रसेन ने उसदेवदूत को विदा किया और विशुद्ध ज्ञानयोग में तत्पर होकर परम वैराग्य का बल प्राप्त कर सनातन मोक्ष रुपी परम सिद्धि प्राप्त की।

सत्ताइसवां अध्याय (आलोक)

जैमिनी जी कहते है – हे जनमेजय! अब तो गांव गांव में राजा है, और सभी अपना प्रिय करने मे सलंन है। इनमें से कोई भी नही पूजा जाता। श्री अग्रसेन ही ऐसे है जो अपनी लोक हितकारी नीतियों से महाराजा के पद को प्राप्त थे। वे अपने आचरणों के कारण सर्वत्र पूजनीय थे। उन्होने अपने बल से विजय प्राप्त की, ऐसे अनेकों राजा भी अग्रसेन के भक्त हो गए थे। हे जनमेजय! **धर्म तपशक्ति, अर्थ समृद्धि, नयी उत्तम नीति, प्रजा पालन, पराक्रम, यश और बल आदि सभी गुण विभुसेन में विद्यमान थे।** हे जनमेजय! दूसरे देशों में जहां पापाचारी राजा दुष्ट बुद्धि वालों के सहयोग से राज्य का संचालन कर अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये प्रयत्नशील थे, प्रजा के पालन की ओर उनका ध्यान नहीं था, वहां के लोग अपने पापाचारी राजाओं से त्रस्त होकर आग्रेय पुरी में बसने की इच्छा से, विभुसेन से मिले। विभुसेन ने उन सभी से कहा **जो केवल अपनी पत्नी से प्रेम करने वाला हो तथा मां महालक्ष्मी की भक्ति में आस्ता रखता हो वह इस आग्रेयपुरी में आकर बस सकता है।** इस प्रकार जो भी परिवार अग्रेयपुरी में आकर बसने लगे उन्हें वहां के प्रजाजनों, प्रमुखजनों एवं द्विजों द्वारा स्नेह एवं करुणा के साथ मान सम्मान से अग्रेय पुरी में बसाने का सहयोग प्रदान किया। **हे जनमेजय! इस जगत में महाराजा अग्रेसन के अनेकों आश्चर्यजनक असंख्य लोक**

हितकारी अद्भुत कृत्य बताये गए हैं जिन सभी का पूरा वर्णन करना असंभव है। मेरे द्वारा आपको संक्षिप्त रुप में ही अग्रसेन के जीवन चरित्र के बारे में बतलाया गया हैं।

महाप्राज्ञ जनमेजय ने कहा – हे महामहर्षे ! आपके श्रीमुख से श्री अग्रसेन जी के श्रेष्ठ चरित्र रुपी अमृत कथा को सुनकर मेरे हृदय में परम आनन्द उत्पन्न हो रहा है। **ऐसे महापुरुष अग्रसेन धन्य हैं, जिन्हें धन्य पुरुषों द्वारा भी धन्य कहा गया है।** ये मानवश्रेष्ठ अग्रसेन निश्चय ही धन्य है। आपने मुझे श्री अग्रसेनजी का उज्ज्वल, निर्मल, पावन तथा लोक हितकारी सुन्दर चरित्र सुनाया है जिसे सुनकर **मेरा यह स्पष्ट मत है कि – मानवों तथा नागों में श्री अग्रसेन जी से बढ़कर और कोई दूसरा श्रेष्ठ पुरुष नहीं है।** हे महामते ! महर्षे! महाराजा श्री अग्रसेन जी का मनोहरी, गहन, रसमय तथा मार्गदर्शक लोककल्याणकारी चरित्र आपके श्रीमुख से सुनने पर निश्चय ही मेरा मन शीतलता से युक्त हो गया है। हे महामते ! महर्षे ! मैं आपसे अग्रसेन जी की यह पावन गाथा पुन: विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ।

जैमिनी जी ने कहा – हे कुरुकुलभूषण ! महाप्राज्ञ ! धर्मज्ञ जनमेजय ! बुद्धिमान पुरुषों को चाहिए कि वे अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की वृद्धि के लिये ऐसे शिष्ट पुरुषों द्वारा आचरित धर्म से ज्ञान ग्रहण करें। इसलिये , हे कुरुकुलभूषण महाप्राज्ञ जनमेजय ! आप सुख से वंचित हो जाने के कारण अब, शोक न करो। उस सुख को तुम तपस्या द्वारा पुन: निश्चित ही प्राप्त कर सकते हो।

महाराजा जनमेजय ने कहा – जिनके कार्यो में नित्य ही धर्म, अर्थ और काम का यथोचित निर्वाह होता हो, जिनके कर्मो से किसी एक की भी हानि नहीं होती, तथा जो सदा श्रेष्ठ आचरण में ही संलग्न रहते है, उनको मेरा

हमेशा नमस्कार है। इस प्रकार कथा का व्याख्यान कर महर्षि जैमिनी, भगवान वेद व्यास जी के साथ तपस्या के लिये पुनः अपने आश्रम की ओर चले गए।

सूतजी कहते हैं - हे महाप्राज्ञ शौनिक जी ! महर्षि जैमिनी कृत यह अद्‌भुत पुरुषार्थ पूर्ण श्री अग्रसेन जी के कर्मो की गाथा तथा पावन चरित्र को कह सुनाया है जो "धारणेय परम मानवधर्म" है। जिन मनुष्यों को वैभव, आयु, यश, भुमि, श्री तथा विजय प्राप्ति की कामना हो, उन्हे अग्रसेन जी का यह **"जय-प्रसंग"** अवश्य सुनना चाहिये। महालक्ष्मी के वरदान से समन्वित यह पुरुषार्थ गाथा अत्यंत सम्मानीय, श्रेयप्रदाता और मंगलकारी है। जिसे कोई भी पुरुष श्रेष्ठ पुण्यों के योग से ही प्राप्त कर सकता है।

ऋषिगण कहते है - श्री अग्रसेन जी के आदर्श जीवन चरित्र के, सभी उत्तमोत्तम अंगो तथा उपांगो से युक्त, कल्पवृक्ष के समान, आठों सिद्धियों से संयुक्त, श्री अग्रसेन के इस आख्यान (पुरुषार्थ गाथा) को नमन करते हुए हम सभी इस पावन ग्रंथ अग्र भागवत को बारम्बार नमन करते है।

अग्रकुल प्रवर्तक भगवान अग्रसेनजी की जय! जय!! जय!!!

कुल प्रवर्तक माधवी - अग्रसेनजी को नमन्, नमन्, शत् शत् नमन्

यह शुभकारी आख्यान (अग्र भागवत) सबके लिये कल्याणकारी हो

अग्र भागवत महापुराण की जय।

गोत्रों की उत्पत्ति

महाराजा अग्रसेन का वंश पुत्र पौत्रादिकों के रुप में शताधिक (सौ से ज्यादा) विकसित हो गया तब महर्षि गर्ग ने कहा कि हे अग्रसेन! अपनी संतति को गोत्र कृत करने हेतु अपने सद्‌गुणों से युक्त, वंश का विकास करने हेतु वंशकर नामक यज्ञ करो। यह वंशकर यज्ञ आपके लिये कल्याणकारी होगा। महर्षि गर्ग के कहने पर महाराजा श्री अग्रसेनजी ने 18 वंशकर यज्ञ कराने का संकल्प किया।

किस राजकुमार के नाम से कोनसा गोत्र निर्धारित किया गया इसका वर्णन स्पष्ट रुप से अग्र भागवत में पढ़ने को नही मिला। परन्तु आज तक के इतिहास में सभी ने यही माना है कि हमारे कुल में वर्णित अठ्ठरह गोत्र अठ्ठारह राजकुमारों के नामों के आधार पर ही बनाये गये है। समय एवं स्थान के अनुरुप भाषा में हर सदी में कुछ अन्तर आजाता है इसी कारण गोत्रो के नामों में पर्यायता आ गई। एक ही गोत्र को स्थान स्थान पर अलग अलग उच्चारण के साथ बोला जाने लगा। ऋषिगणों, विद्वजनों एवं इतिहासकारों ने सर्वमान्य रुप से निम्नानुसार गोत्रों का वर्णन किया है-

राजकुमार का नाम	प्रचलित गोत्र	राजकुमार का नाम	प्रचलित गोत्र
विभुसेन	गर्ग	श्रीमंतसेन	सिंघल
विक्रमसेन	बिन्दल	सोमसेन	मित्तल
अजयसेन	कुच्छल	धरणीधर	तिंगल
विजयसेन	गोयल	अतुलसेन	मधुकुल
अलनसेन	गोयन	अशोकसेन	कंसल
नीरजसेन	जिन्दल	सुदर्शनसेन	तायल
अमरसेन	बंसल	सिद्धार्थसेन	धारण
नगेन्द्रसेन	नागल	गणेश्वर	मंगल
सुरेशसेन	भन्दल	लोकपति	ऐरण

अग्र भागवत के विशिष्ट बिन्दु

- अध्याय 1 से 22 में महाराजा अग्रसेन जी के जीवन चरित्र, वीरता के किस्से, उपलब्धियां , एवं सेवाओं का वर्णन किया गया है।
- अध्याय 23 से 27 मे महाराजा अग्रसेन जी की शिक्षाए, नीतियां, धर्म-प्रचार, राज नीति, वानपस्थ आश्रम के जीवन आदि उपदेशों का वर्णन किया गया है।
- माधवी देवी के विवाह के उपरान्त नागराज महीधर ने अग्रसेन जी को एक तल दहेज में देने के लिये कहा, तो महाराजा अग्रसेन जी ने दहेज में राज स्वीकार करने से मना कर दिया, तब नागराज महीधर ने अपने सबसे सुन्दर तल का नाम अग्रसेन जी के नाम पर "अग्रतल" कर दिया वही "अग्रतल" वर्तमान में त्रिपुरा की राजधानी "अगरतला" के नाम से विख्यात है।
- तात्कालीन नागलोक की प्रमुख नगरी (राजधानी) मनीपुर थी। मनीपुर में ही नागराज महीधर निवास करते थे। मनीपुर पूर्वांचल में रमणिय पर्वत श्रृंखलाओं से आच्छादित प्रदेश है।
- नागवंसियों ने नागलोक की संरचना भी ब्रह्माजी की सृष्टि की रचना के अनुसार की थी, ब्रह्माजी ने सृष्टि पर सात लोक बनाये थे, उसी प्रकार नागलोक में सात तल (नगर) बसाये- जिनमें तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, एवं पाताल की संरचना की गई। वर्तमान समय में नागलोक के सातो तल असम, मेघालय, मनिपुर, त्रिपुरा, मिजोरम, नागालैण्ड एवं अरुणाचल प्रदेशों के नाम से विख्यात है। इन सातो प्रदेशों को नागलोक की तर्ज पर वर्तमान में भी संयुक्त एकल नाम "सातों बहनों" के नाम से जाना जाता है ।

- माधवी देवी से विवाह के उपरान्त अग्रसेनजी को नागलोक से आग्रेय पुरी आने के लिये सात रात्री मार्ग में विश्राम करना पड़ा (अर्थात आठ दिन की यात्रा करनी पड़ी)
- अग्रसेनजी ने अहिंसा एवं दया भावना से प्रेरित होकर जिस अठ्ठारहवें यज्ञ को क्षत्रिय वर्ण के अनुरुप पूर्ण नहीं किया, उस अपूर्ण यज्ञ से प्रजा पर आने वाले विनाश के कारणों को दृष्टिगत रखते हुए क्षत्रिय धर्म का त्याग कर "वैश्य" धर्म को अपनाया, और वैश्य धर्म के शास्त्रीय विधान के अनुरुप ही दूध, दही एवं सुगन्धित पुष्पों से यज्ञ के देवताओं के समक्ष बली पूर्ण कर यज्ञ को पूर्ण किया। इस प्रकार महात्मा अग्रसेन जी ने सभी अठ्ठारह यज्ञ पूर्ण किये। यज्ञों के आधार पर साढ़े सत्रह गोत्रो वाली कहानी तथ्यों के अभाव में हमारे प्रचलन में आ गई थी, परन्तु अब अठ्ठारह यज्ञ पूर्ण करने का प्रमाणिक साहित्य मिल जाने पर इस कहानी को पूर्ण विराम लग गया है।

अग्र भागवत कथा की जानकारी जन जन तक पहुंचाने के उद्देश्य से रामगोपाल जी बेदिल द्वारा प्रकाशित अग्र भागवत पुस्तिका श्री अग्रसेन महासभा ट्रस्ट जयपुर के कार्यालय से रियायती मूल्य पर 250/- (दो सौ पचास) रुपयों में प्राप्त की जा सकती है।

अग्र भागवत की आरती

आरती अग्र भागवत जी की। अग्रसेन महाराज जी की ।। टेक।।

महालक्ष्मी के प्रिय सुत तुम, शिवशंकर के कृपापात्र तुम।

इन्द्र-कृपा-अभिलाषी भी तुम, आरती प्रिय भाव ही जी की ।। आ.अ.।।

सूर्यवंश के तुम कुल भूषण, नागवंश-गलमणि आभूषण।

प्रगतिवंश सद् इच्छा भूषण, आरती शुभअभिलाषी जी की ।। आ.अ.।।

आग्रेयपुरी के संस्थापक तुम, अग्र-वंश के स्थापक तुम।

न्याय-नीति नय संग्राहक तुम, आरती दृढ़ स्वराज्य ही जी की ।। आ.अ.।।

धर्मभाव से धर्मदेव तुम, कर्मभाव से कर्मदेव तुम।

सत्यभाव से सत्यदेव तुम, आरती श्रेष्ठ भाव ही जी की ।। आ.अ.।।

वल्लभ-वैदर्भी के सुत तुम, आश्विन शुक्ल एक जन्मे तुम।

कृष्ण युधिष्ठिर अनुरागी तुम, आरती माधवि उर प्रिय जी की ।। आ.अ.।।

पुत्र अष्टदश तुमने जाये, सुता ईश्वरी गोद खिलाये।

वधूं वासुकी से तुम पाये, आरती शुभ संतति पित जी की ।। आ.अ.।।

यज्ञ अठारह जब तुम कीये, पशु-हिंसा भायी नहिं हीये।

क्षत्रि-धर्म तुरतहि तज दीये, आरती वैश्य अग्र ही जी की ।। आ.अ.।।

गोत्र ऋत्विजों से लीन्हें तुम, व्याह सत्तरह में बोले तुम।

'सर्वलोकहितधर्म' कहे तुम, आरती सर्व हितैषी जी की ।। आ.अ.।।

एक रुपैया एक ईंट दी, सत्य प्रेम विश्वास सीख दी।

परम हिंसा सद्वृत्ति दी, आरती करुणामय उर जी की ।। आ.अ.।।

तुम राजा तुम महाराजा हो, पुण्य धर्मी महातमा हो।

शत्रु अजात मोक्षधामा हो, आरती बैकुण्ठगामी जी की ।। आ.अ.।।

कलि पापों को दूर करो प्रभु, खाली झोली सबक भरो प्रभु।

कष्ट अशांति वेग हरो प्रभु, आरती सौख्यभाव ही जी की ।। आ.अ.।।

हम पर कृपा प्रभु नित कीजे, धन सुत ऐश्वर श्री नित दीजे।

'विष्णुदास' सब सुखी करीजे, आरती श्री श्रीपति ही जी की ।। आ.अ.।।

।। जय अग्रसेन जी महाराज ।।

सादर समर्पित

स्व. श्रीमती चन्द्रकान्ता अग्रवाल

(धर्मपत्नी श्री गिरिजाशंकर तुरकासवाला)

(24 मई, 1957-31 जनवरी, 2010)

सुरेशसेन भन्दल
अमरसेन बंसल
अलनसेन गोयन
अजयसेन कुच्छल
विभुसेन गर्ग
विक्रमसेन बिन्दल
विजयसेन गोयल
नीरजसेन जिन्दल
नगेन्द्रसेन नागल
श्रीमंतसेन सिंघल

गणेशवर मंगल
सुदर्शन सेन तायल
अतुलसेन मधुकुल
सोमसेन मित्तल
धरणीधर तिंगल
अशोकसेन कंसल
सिद्धार्थसेन धारण
लोकपति ऐरण